॥ श्रीहरिः ॥

(संक्षिप्त भक्त-चरित-माला १५)

भक्त-महिलारत्न

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

यह संक्षिप्त भक्तचरितमालाका पंद्रहवाँ पुष्प है। इसमें नौ महिलारत्नोंके बहुत ही भक्तिपूत, सुन्दर, शिक्षाप्रद चरित्र हैं। भगवान्‌की सच्ची प्रीतिमें किस प्रकारका अद्‌भुत विषय-वैराग्य, सुख-दुःखमें कैसी सुन्दर समता, भगवान्‌के प्रत्येक मंगल-विधानमें कैसा अनुपम विश्वास होता है और भगवान्‌में कैसी विलक्षण श्रद्धा होती है—इसके आदर्श उदाहरण इन चरित्रोंमें पद-पदपर मिलेंगे। भगवान्‌में अनुराग चाहनेवाले प्रत्येक नर-नारीको यह पुस्तक पढ़नी चाहिये। विधवा बहिनोंकी चित्त-शान्तिके लिये इसमें कई चरित्र बड़े उपादेय हैं। आशा है, जनता इस छोटी-सी पुस्तिकासे लाभ उठायेगी।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची
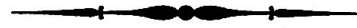
॥ श्रीहरिः ॥

भक्त-महिलारत्न

रानी रत्नावती

आँबेरके प्रसिद्ध महाराज मानसिंहजीके छोटे भाईका नाम राजा माधोसिंह था। इनकी पत्नीका नाम था रत्नावती। रत्नावतीका बदन जैसा सुन्दर था, वैसा ही उनका मन भी सद्‌गुण और सद्‌विचारोंसे सुसज्जित था। पतिचरणोंमें उनका बड़ा प्रेम था। स्वभाव इतना मधुर और पवित्र था कि जो कोई उनसे बात करता, वही उनके प्रति श्रद्धा करने लगता। महलकी दासियाँ तो उनके सद्‌व्यवहारसे मुग्ध होकर उन्हें साक्षात् जननी समझतीं। रत्नावतीजीके महलमें एक दासी बड़ी ही भक्तिमती थी। रानी रत्नावतीने एकान्तमें कई बार देखा—भगवान् श्रीकृष्णकी मूर्ति उसके सामने विराजमान है, वह बड़े प्रेमसे कुछ गुनगुना रही है, शरीर रोमांचित है, आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही है। लम्बे साँस चल रहे हैं और वह सिसक-सिसककर रो रही है। कभी-कभी उसको इसी अवस्थामें बेहोश हो जाते देखा। वह मामूली दासी थी; परंतु भगवान्‌के दरबारमें तो रानी-दासीका भेद नहीं है, उसका दरवाजा तो सबके लिये खुल जाता है। जो कोई भी भगवत्प्रेमकी एकान्तमें लालसा करता है, वही उसे पाता है। भगवान् यह नहीं जानना चाहते कि यह कौन है, किस जातिका है और क्या करता है। वे तो केवल उसके हृदयकी निर्मलता, अनन्यता और सच्ची लगन देखते हैं, फिर उसे प्रेमदान करनेमें विलम्ब नहीं करते—उससे साक्षात् मिलकर उसे अपनी लोकपावनी

लीलामें शामिल करनेमें भी संकोच नहीं करते। रत्नावतीजीकी वह भाग्यवती पुण्यशीला दासी भी ऐसी ही भगवान्‌की एक पवित्र प्रेमिका थी। अखिल-रसामृतसिन्धु भगवान् उसके सामने भाँति-भाँतिकी लीला कर उसे आनन्द-समुद्रमें डुबाये रखते थे। रानीका हृदय उसकी ओर खिंचा। वह बार-बार उसकी इस लोकोत्तर अवस्थाको देखनेकी चेष्टा करती, देखते-देखते रानीके मनमें भी प्रेम उत्पन्न होने लगा। हमारे शरीरके अंदर हृदयमें जिस प्रकारके विचारोंके परमाणु भरे रहते हैं, उसी प्रकारके परमाणु स्वाभाविक ही हमारे रोमसे सदा बाहर निकलते रहते हैं, पापी विचारवाले मनुष्योंके शरीरसे पापके परमाणु, पुण्यात्माके शरीरसे पुण्यके, ज्ञानियोंके शरीरसे ज्ञानके और प्रेमी भक्तोंके शरीरसे प्रेमके। ये परमाणु अपनी शक्तिके तारतम्यके अनुसार अनुकूल अथवा प्रतिकूल वायुमण्डलके अनुरूप बाहर फैलते हैं और उस वातावरणमें जो कुछ भी होता है, सबपर अपना असर डालते हैं। यह नियमकी बात है और जिनके अंदर जो भावपरमाणु अधिक मात्रामें और अधिक घने होते हैं, उनके अंदरसे अधिक निकलते हैं और वे अधिक प्रभावशाली होते हैं। उस प्रेममयी दासीका हृदय पवित्र प्रेमसे भरा था। भरा ही नहीं था, उसमें प्रेमकी बाढ़ आ गयी थी। प्रेम उसमें समाता नहीं था। बरबस बाहर निकला जाता था। उस प्रेमने रानीपर अपना प्रभाव जमाया। एक दिन दासीके मुँहसे बड़ी ही व्याकुलतासे भरे 'हे नवलकिशोर! हे नन्दनन्दन! हे व्रजचन्द्र!' की पुकार सुनकर रानी भी व्याकुल हो गयीं। उन्हें इस दुर्लभ दशाको पाकर बड़ा ही आनन्द मिला।

अब रानी उस दासीके पीछे पड़ गयी और उससे बारंबार पूछने लगी कि बता, "तुझे यह प्रेम कैसे प्राप्त हुआ? भगवान्‌के

नाममें इतना माधुर्य तूने कैसे भर दिया? अहा, कितना जादू है उन नामोंमें! मैं तेरे मुँहसे जब 'हा नन्दनन्दन! हा व्रजचन्द्र!' सुनती हूँ, तब देहकी सुधि भूल जाती हूँ, मेरा हृदय बरबस उन मधुर नामोंकी ओर खिंच जाता है और आँखोंसे आँसू निकल पड़ते हैं। बता, बता, मुझको यह माधुरी निरन्तर कैसे मिलेगी; मैं कैसे उनकी मोहिनी मूर्ति देख सकूँगी, जिनके नामोंमें इतना आकर्षण है, इतना माधुर्य है और इतना रस भरा हुआ है? बता, मैं उन्हें कैसे देख पाऊँगी? और कैसे उनकी मधुर मुरली सुन सकूँगी? मुझे भगवान्‌के प्रेमका वह रहस्य बतला, जिसमें तू निरन्तर डूबी रहती है और जिसके एक कणका दूरसे दर्शन करके ही मेरी ऐसी दशा हो चली है।''

दासीने पहले-पहले तो टालनेकी कोशिश की; परन्तु जब रानी बहुत पीछे पड़ीं तब एक दिन उसने कहा, महारानीजी! आप यह बात मुझसे न पूछिये। आप राजमहलके सुखोंको भोगिये! क्यों व्यर्थ इस मार्गमें आकर दुःखोंको निमन्त्रण देकर बुलाती हैं। यह रास्ता काँटोंसे भरा है। इसमें कहीं सुखका नामोनिशान नहीं है। पद-पदपर लहूलुहान होना पड़ता है, तब कहीं इसके समीप पहुँचा जा सकता है। पहुँचनेपर तो अलौकिक आनन्द मिलता है; परन्तु मार्गकी कठिनाइयाँ इतनी भयानक हैं कि उनको सुनकर ही दिल दहल जाता है; रात-दिन हृदयमें भट्ठी जलती रहती है आँसुओंकी धारा बहती है; परन्तु वह इस आगको बुझाती नहीं, घी बनकर इसे और भी उभाड़ती है। सिसकना और सिर पीटना तो नित्यका काम होता है। आप राजरानी हैं। भोग-सुखोंमें पली-पोसी हैं। यह पंथ तो विषय-विरागियोंका है—जो संसारके सारे भोग-सुखोंसे नाता

तोड़ चुके हैं या तोड़नेको तैयार हैं और कहीं यदि मोहनकी तनिक-सी माधुरी देखनेको मिल गयी, फिर तो सर्वस्व ही हाथसे चला जायगा। इसलिये न तो यह सब पूछिये और न उस ओर ताकिये ही—

हेरत बारहिं बार उतै कित बावरी बाल कहा धौं करैगी।
जो कबहूँ 'रसखानि' लखै फिरि क्योंहू न बीर री धीर धरैगी॥
मानिहै काहूकी कानि नहीं जब रूप ठगी हरि-रंग ढरैगी।
याते कहूँ सिख मानि भटू यह हेरनि तेरेइ पैंडे परैगी॥

प्रीतिकी रीति अनीति है प्रीति करौ जिनि कोइ।
सुख दीपक कैसे बरै बिरहनाग जहँ होइ॥
बिद्या आदर लच्छमी और ग्यान गुन गर्ब।
प्रेम-पौरि पग धरत ही गये ततच्छन सर्ब॥
नेह नेह सब कोउ कहै नेह करौ मति कोइ।
मिलें दुखी बिछुरें दुखी, नेही सुखी न होइ॥
नेह स्वर्गमें ऊतर्‌यौ भूपर कीनों गौन।
गली-गली ढूँढ़त फिरैं बिन सिरको धर कौन॥
प्रेम कठिन संसारमें ना कीजै जगदीस।
जो कीजै तौ दीजिये तन मन धन अरु सीस॥
'नारायन' घाटी कठिन जहाँ प्रेमको धाम।
बिकल मूरछा सिसकिबो ये मगके बिश्राम॥
प्रेम-सरोवर यह अगम यहाँ न आवत कोइ।
आवत सो फिरि जात नहिं, रहत यहींको होइ॥

यह सब सुनकर रानी रत्नावतीकी उत्कण्ठा और भी बढ़ गयी। वे बड़े आग्रहसे श्रीकृष्णप्रेमका रहस्य पूछने लगीं। आखिर, उनके मनमें भोग-वैराग्य देखकर तथा उन्हें अधिकारी जानकर कृष्ण-प्रेममें डूबी हुई दासीने उन्हें श्रीकृष्ण-प्रेमका दुर्लभ उपदेश किया।

अब तो दासी रानीकी गुरु हो गयी। रानी गुरुबुद्धिसे उसका आदर-सत्कार करने लगी। विलासभवन भगवान्‌का लीला-भवन बन गया। दिन-रात हरिचर्चा और उनकी अनूप रूप-माधुरीका बखान होने लगा! सत्संगका प्रभाव होता ही है, फिर सच्चे भगवत्प्रेमियोंके संगका तो कहना ही क्या है? रानीका मन-मधुकर श्यामसुन्दर व्रजनन्दनके मुखकमलके मकरन्दका पान करनेके लिये छटपटा उठा। वे रोकर कहने लगीं—

'कछुक उपाय कीजै, मोहन दिखाय दीजै,
तब ही तो जीजै वे तो आनि उर अरे हैं।'

'कुछ उपाय करो, मुझे मोहनके दर्शन कराओ, तभी यह जीवन रहेगा। अहा! मेरे हृदयमें आकर अड़ गये हैं।'

दासीने कहा—

'दरसन दूर राज छोड़ै लोटै धूर पै न
पाव छबि पूर एक प्रेम बस करे हैं।'

'महारानी! दर्शन सहज नहीं है, जो लोग राज छोड़कर धूलमें लोट पड़ते हैं तथा अनेकों उपाय करते हैं, वे भी उस रूप-माधुरीके दर्शन नहीं पाते। हाँ, उन्हें वशमें करनेका एक उपाय है—वह है प्रेम। आप चाहें तो प्रेमसे उन्हें अपने वश कर सकती हैं।'

रानीके मनमें जँच गया था कि भगवान्‌से बढ़कर मूल्यवान् वस्तु और कुछ भी नहीं है। इस लोक और परलोकका सब कुछ देनेपर भी यदि भगवान् मिल जायँ तो बहुत सस्ते ही मिलते हैं। जिसके मनमें यह निश्चय हो जाता है कि श्रीहरि अमूल्य निधि हैं और वे ही मेरे परम प्रियतम हैं, वह उनके लिये कौन-से त्यागको बड़ी बात समझता है। वह तन-मन,

भोग-मोक्ष, सब कुछ समर्पण करके भी यही समझता है कि मेरे पास देनेको है ही क्या और वास्तवमें बात भी ऐसी ही है। भगवान् तन-मन, साधन-प्रयत्न या भोग-मोक्षके बदलेमें थोड़े ही मिल सकते हैं। वे तो कृपा करके ही अपने दर्शन देते हैं और कृपाका अनुभव उन्हींको होता है, जो संसारके भोगोंको तुच्छ समझकर केवल उन्हींसे प्रेम करना चाहते हैं। रानी रत्नावतीके मनमें यह प्रेमका भाव कुछ-कुछ जाग उठा। उन्होंने दासी गुरुकी अनुमतिके अनुसार नीलमका एक सुन्दर विग्रह बनाकर तन-मन-धनसे उसकी सेवा आरम्भ की। वे अब जाग्रत्, स्वप्न—दोनों ही स्थितियोंमें भगवत्प्रेमका अपूर्व आनन्द लूटने लगीं। राजरानी भोगसे मुँह मोड़कर भगवत्प्रेमके पावन पथपर चल पड़ीं। एकके साथ दूसरी सजातीय वस्तु आप ही आती है। भजनके साथ-साथ संत-समागम भी होने लगा। सहज कृपालु महात्मा लोग भी कभी-कभी दर्शन देने लगे।

एक बार एक पहुँचे हुए प्रेमी महात्मा पधारे। वे वैराग्यकी मूर्ति थे और भगवत्प्रेममें झूम रहे थे। रानीके मनमें आया, मेरा रानीपन सत्संगमें बड़ा बाधक हो रहा है। परन्तु यह रानीपन है तो आरोपित ही न! यह मेरा स्वरूप तो है ही नहीं, फिर इसे मैं पकड़े रहूँ और अपने मार्गमें एक बड़ी बाधा रहने दूँ! उन्होंने दासी गुरुसे पूछा—

'पूछी वा खवासीसों जु 'रानी' कौन अंग जाके
इतनी अटक संग-भंग सुख भारिये।'

'भला बताओ तो मेरे इन अंगोंमें कौन-सा अंग रानी है, जिसके कारण मुझे सत्संगके महान् सुखसे विमुख रहना पड़ता है।' दासीने मुसकरा दिया। रानीने आज पद-मर्यादाका

बाँध तोड़ दिया। दासीने रोका—परंतु वह नहीं मानी। जाकर महात्माके दर्शन किये और सत्संगसे लाभ उठाया।

राजपरिवारमें चर्चा होने लगी! रत्नावतीके स्वामी राजा माधोसिंह दिल्ली थे। मन्त्रियोंने उन्हें पत्र लिखा कि 'रानी कुलकी लज्जा-मर्यादा छोड़कर मोडोंकी* भीड़में जा बैठी है।' पत्र माधोसिंहके पास पहुँचा। पढ़ते ही उनके तन-मनमें आग-सी लग गयी। आँखें लाल हो गयीं। शरीर क्रोधसे काँपने लगा। दैवयोगसे रत्नावतीजीके गर्भसे उत्पन्न राजा माधोसिंहका पुत्र कुँवर प्रेमसिंह वहाँ आ पहुँचा और उसने पिताके चरणोंमें सिर टेककर प्रणाम किया। प्रेमसिंहपर भी माताका कुछ असर था। उसके ललाटपर तिलक और गलेमें तुलसीकी माला शोभा पा रही थी। एक तो राजाको क्रोध हो ही रहा था, फिर पुत्रको इस प्रकारके वेषमें देखकर तो उनको बहुत ही क्षोभ हुआ। राजाने अवज्ञाभरे शब्दोंमें तिरस्कार करते हुए कहा 'आव मोडीका', 'साधुनीके लड़के आ।' पिताकी भाव-भंगी देखकर और उनकी तिरस्कारयुक्त वाणी सुनकर राजकुमार बहुत ही दुःखी हुआ और चुपचाप वहाँसे चला गया।

लोगोंसे पूछनेपर पिताकी नाराजगीका प्रेमसिंहको पता लगा। प्रेमसिंह संस्कारी बालक था। उसके हृदयमें पूर्वजन्मके भक्तिके भाव थे और थी माताकी शिक्षा। उसने विचारा—'पिताजीने बहुत उत्तम आशीर्वाद दिया, जो मुझे 'मोडीका लड़का' कहा। अब तो मैं सचमुच मोडीका लड़का मोडा (साधु) ही बनूँगा।' यह सोचकर वह माताकी भक्तिपूर्ण भावनापर बड़ा ही प्रसन्न हुआ और उसी क्षण उसने माताको पत्र लिखा—

'माताजी! तुम धन्य हो, जो तुम्हारे हृदयमें भगवान्‌की भक्ति

---

* राजस्थानकी बोलीमें साधुओंका अवज्ञाभरा नाम।

जाग्रत् हुई है और तुम्हारा मन भगवान्‌की ओर लगा है। भगवान्‌की बड़ी कृपासे ही ऐसा होता है। अब तो इस भक्तिको सर्वथा सच्ची भक्ति बनाकर ही छोड़ो। प्राण चले जायँ, पर टेक न जाय। पिताजीने आज मुझे 'मोडीका लड़का' कहा है। अतएव अब मैं सचमुच मोडीका पुत्र बनना और रहना चाहता हूँ। देखो, मेरी यह प्रार्थना व्यर्थ न जाय।'

पत्र पढ़ते ही रानीको प्रेमावेश हो गया। अहा! सच्चा पुत्र तो वही है जो अपनी माताको श्रीभगवान्‌की ओर जानेके लिये प्रेरणा करता है और उसमें उत्साह भरता है। वे प्रेमके पथपर तो चढ़ ही चुकी थीं। आजसे राजवेष छोड़ दिया, राजसी गहने-कपड़े उतार दिये, इत्र-फुलेलका त्याग कर दिया और सादा पोशाकमें रहकर भजन-कीर्तन करने लगीं। पुत्रको लिख दिया—*'भइ मोडी आज, तुम हित करि जाँचिये।'* मैं आज सचमुच 'मोडी हो गयी हूँ, प्रेमसे आकर जाँच लो।'

कुँवर प्रेमसिंहको पत्र मिलते ही वह आनन्दसे नाच उठा। बात राजा माधोसिंहतक पहुँची, उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ और वे पुत्रको मारनेके लिये तैयार हो गये। मन्त्रियोंने माधोसिंहको बहुत समझाया, परन्तु वह नहीं माना। इधर प्रेमसिंहको भी क्षोभ हो गया। आखिर लोगोंने दोनोंको समझा-बुझाकर शान्त किया; परन्तु राजा माधोसिंहके मनमें रानीके प्रति जो क्रोध था, वह शान्त नहीं हुआ। वे रानीको मार डालनेके विचारसे रातको ही दिल्लीसे चल दिये। वे आँबेर पहुँचे और लोगोंसे मिले। लोगोंने रानीकी बातें सुनायीं। रानीके विरोधियोंने कुछ बढ़ाकर कहा, जिससे माधोसिंहका क्षोभ और भी बढ़ गया।

कई कुचक्रियोंसे मिलकर माधोसिंह रानीको मारनेकी तरकीब सोचने लगे। आखिर षड्यन्त्रकारियोंने यह निश्चय

किया कि पिंजरेमें जो सिंह है, उसे ले जाकर रानीके महलमें छोड़ दिया जाय। सिंह रानीको मार डालेगा, तब सिंहको पकड़कर यह बात फैला दी जायगी कि सिंह पिंजरेसे छूट गया था, इससे यह दुर्घटना हो गयी। निश्चयके अनुसार ही काम किया गया, महलमें सिंह छोड़ दिया गया। रानी उस समय पूजा कर रही थी; दासीने सिंहको देखते ही पुकारकर कहा—'देखिये, सिंह आया।'

रानीकी स्थिति बड़ी विचित्र थी, हृदय आनन्दसे भरा था, नेत्रोंमें अनुरागके आँसू थे। इन्द्रियाँ तमाम सेवामें लगी थीं। उन्होंने सुना ही नहीं। इतनेमें सिंह कुछ समीप आ गया, दासीने फिर पुकारकर कहा—'रानीजी! सिंह आ गया।' रानीने बड़ी शान्तिसे कहा, 'बड़े ही आनन्दकी बात है, आज मेरे बड़े भाग्यसे मेरे प्रह्लादके स्वामी श्रीनृसिंहजी पधारे हैं, आइये इनकी पूजा करें।' इतना कहकर रानी पूजाकी सामग्री लेकर बड़े ही सम्मानके साथ पूजा करने दौड़ीं। सिंह समीप आ ही गया था; परन्तु अब वह सिंह नहीं था! रत्नावतीजीके सामने तो साक्षात् श्रीनृसिंहजी उपस्थित थे। रानीने बड़े ही सुन्दर, मनोहर और आकर्षकरूपमें परम शोभासम्पन्न भगवान् नृसिंहदेवके दर्शन किये। उन्होंने प्रणाम करके पाद्य-अर्घ्य दिया, माला पहनायी, तिलक दिया, धूप-दीप किया, भोग लगाया और प्रणाम-आरती करके वे उनकी स्तुति करने लगीं।

कुछ ही क्षणों बाद सिंहरूप प्रभु महलसे निकले और जो लोग पिंजरा लेकर रत्नावतीजीको सिंहसे मरवाने आये थे, सिंहरूप प्रभुने बात-की-बातमें उनको परलोक पहुँचा दिया। और स्वयं मामूली सिंह बनकर पिंजरेमें प्रवेश कर गये।

लोगोंने दौड़कर राजा माधोसिंहको सूचना दी कि 'रानीने

श्रीनृसिंहभगवान् मानकर सिंहकी पूजा की, सिंहने उनकी पूजा स्वीकार कर ली और बाहर आकर आदमियोंको मार डाला; रानी अब आनन्दसे बैठी भजन कर रही हैं।'

अब तो माधोसिंहकी आँखें खुलीं। भक्तका गौरव उनके ध्यानमें आया। सारी दुर्भावना क्षणभरमें नष्ट हो गयी। राजा दौड़कर महलमें आये और प्रणाम करने लगे। रानी भगवत्सेवामें तल्लीन थीं। दासीने कहा—'महाराज प्रणाम कर रहे हैं।' तब रानीने इधर ध्यान दिया और वे बोलीं कि—'महाराज श्रीनन्दलालजीको प्रणाम कर रहे हैं।' रानीकी दृष्टि भगवान्‌में गड़ी हुई थी। राजाने नम्रतासे कहा—'एक बार मेरी ओर तो देखो।' रानी बोलीं—'महाराज! क्या करूँ, ये आँखें इधरसे हटती ही नहीं, मैं बेबस हूँ।' राजा बोले—'सारा राज और धन तुम्हारा है, तुम जैसे चाहो इसे काममें लाओ।' रानीने कहा—'स्वामिन्! मेरा तो एकमात्र धन ये मेरे श्यामसुन्दर हैं। मुझे इनके साथ बड़ा ही आनन्द मिलता है। आप मुझको इन्हींमें लगी रहने दीजिये।'

राजा प्रेम और आनन्दमें गद्‌गद हो गये और रानीकी भक्तिके प्रभावसे उनका चित्त भी भगवान्‌की ओर खिंचने लगा। जिनकी पत्नी भक्त हो, उनपर भगवान्‌की कृपा क्यों न हो। घरमें एक भी भक्त होता है तो वह कुलको तार देता है।

एक समय महाराज मानसिंह अपने छोटे भाई माधोसिंहके साथ किसी बड़ी भारी नदीको नावसे पार कर रहे थे। तूफान आ गया, नाव डूबने लगी। मानसिंहजीने घबड़ाकर कहा—'भाई! अब तो बचनेका कोई उपाय नहीं है।' माधोसिंह बोले—आपकी 'अनुज-वधू' अर्थात् मेरी पत्नी बड़ी भक्त है। 'उसकी कृपासे हमलोग पार हो जायँगे।' दोनोंने रानी रत्नावतीका ध्यान

किया। जादूकी तरह नाव किनारे लग गयी। दोनों भाई नया जन्म पाकर आनन्दमग्न हो गये। यह तो मामूली नाव थी और नदी भी मामूली ही थी। भगवान्‌के सच्चे भक्तका आश्रय करके तो बड़े-से-बड़ा पापी मनुष्य बात-की-बातमें दुस्तर भवसागरसे तर जा सकता है। विश्वास होना चाहिये।

अब तो मानसिंहजीके मनमें रानीके दर्शनकी लालसा जाग उठी, आकर उन्होंने दर्शन किया।

रानीका जीवन प्रेममय हो गया। वह अपने प्रियतम श्यामसुन्दरके साथ घुल-मिल गयीं।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्तिमती हरदेवी

हरदेवी विशालपुरके सेठ स्थानकदेवकी एकमात्र कन्या थी। माताका नाम गजदेवी था। एकमात्र संतान होनेसे हरदेवी माता-पिताको बहुत ही प्यारी थी। घरमें किसी चीजकी कमी नहीं थी। हरदेवीका पालन-पोषण बड़े ही लाड़-चावसे हुआ था। हरदेवीकी माता बड़ी ही विदुषी थी और उसका हृदय भक्तिसे भरा था। वह नित्य श्रद्धापूर्वक भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा किया करती। माताकी पूजाके समय हरदेवी पास बैठी रहती; वह भी माताकी देखा-देखी खेलनेमें भगवान्‌की पूजा किया करती। माता ही संतानकी प्रथम गुरु होती है। माताके स्वभाव, आचरण, चरित्र और व्यवहारका बालकके जीवनपर अमिट प्रभाव पड़ता है। हरदेवीके हृदयमें भी इसीके अनुसार भक्तिके अंकुर पैदा हो गये।

उचित शिक्षा-दीक्षा आदिके अनन्तर हरदेवी जब विवाहके योग्य हुई, तब बड़ी धूम-धामसे उसका विवाह चम्पकपुरीके सेठ गुणदेवके पुत्र हर्षदेवके साथ कर दिया गया। विवाह बड़े आनन्दसे हो गया। विदाईका दिन था। अकस्मात् हरदेवीकी माता गजदेवीको बुखार चढ़ आया। घरमें भीड़ बहुत थी, दवाकी चेष्टा नहीं हो सकी। गजदेवीका बुखार बहुत तेजीसे बढ़ने लगा। वह अपने भगवान्‌के पूजा-भवनमें जाकर उनके सामने पड़ गयी। उसकी आँखोंमें आँसू थे और बड़ी ही गद्गद वाणीसे उसने कहना आरम्भ किया—

'भगवन्! मालूम होता है, तुम अब मुझे अपने श्रीचरणोंमें बुलाना चाहते हो। मुझे इस बातका स्मरण होते ही बड़ा हर्ष हो रहा है। उसी हर्षके मारे मेरे नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह

रही है। हे मेरे अनन्त प्राणप्रियतम! तुम अन्तर्यामी हो, जानते हो मेरे मनमें बरसोंसे कभी कोई भी कामना नहीं उठी। मैं यही चाहती हूँ, कोई कामना मेरे मनमें कभी उठे ही नहीं। मेरा मन सदा यही कहता है कि तुम्हारी इच्छाका अनुसरण करनेमें ही परम कल्याण है। इससे मैं सदा यही प्रयत्न करती हूँ कि मेरे मनमें कोई इच्छा न रहे। सारी इच्छाएँ तुम्हारी इच्छामें विलीन हो जायँ। तुम्हारी इच्छा ही सफल हो और तुमने सदा मेरी इस भावनाको बल दिया है तथा अपनी ओर खींचा है। आज तुम सदाके लिये अपनी सेवामें बुलानेकी व्यवस्था कर रहे हो, इससे बढ़कर मेरे लिये प्रसन्नताकी बात और क्या हो सकती है। परंतु मेरे स्वामिन्! पता नहीं क्यों—शायद इसमें भी तुम्हारी ही प्रेरणा हो—मेरे मनमें एक कामना जाग्रत् हो रही है; वह यह कि इस बालिका हरदेवीकी आत्माको भी तुम अपने पावन चरणोंमें स्वीकार कर लो। यह तुम्हारी ही हो जाय। यद्यपि इसका विवाह हो गया है, आज यह अपने पतिके घर जा रही है, परंतु इसके परम लक्ष्य तो तुम्हीं हो। बस, मैं तुमसे केवल इतना ही वरदान चाहती हूँ कि इसपर तुम्हारी कृपादृष्टि सदा बनी रहे और अन्तमें इसे भी सेवाधिकार प्राप्त हो। मेरे पति तो मेरी जीवन-यात्राके साथी ही रहे हैं, उनके लिये मैं क्या माँगूँ?'

गजदेवीकी सच्ची और पवित्र प्रार्थना स्वीकृत हो गयी। भगवान्‌ने प्रकट होकर कहा—'देवि! तुम मेरी भक्त हो, मेरे ही परमधाममें जा रही हो और सदा वहीं रहोगी। हरदेवी तुम्हारी पुत्री है—इस सम्बन्धसे वह मेरी भक्तिको प्राप्त होती ही, परंतु अब तो तुमने उसके लिये वर माँग लिया है। तुम्हारी यह चाह बड़ी उत्तम है। तुम निश्चिन्त हो जाओ, तुम्हारी

चाहके अनुसार हरदेवी मेरी परम भक्त होगी और यथावसर मेरे परमधाममें आकर तुमसे मिलेगी। तुम्हारे संगके प्रभावसे तुम्हारे पति भी मेरे परमधाममें ही आयेंगे। उनके लिये कुछ भी माँगनेकी आवश्यकता नहीं है। इसके बाद गजदेवीने देखा—ज्योतिर्मय प्रकाशके अंदर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

गजदेवीको बड़े जोरका ज्वर था, वह विवाहके सब कार्योंसे अलग होकर भगवान्‌के पूजा-मन्दिरमें पड़ी थी। सेठको पता लगा, तब वे वहाँ आये। गजदेवीने कहा—'स्वामिन्! आज यह दासी आपसे अलग हो रही है। विदा दीजिये। मेरे अबतकके अपराधोंको क्षमा कीजिये और आशीर्वाद दीजिये कि इसकी आत्मा भगवान् श्रीकृष्णकी चरण-रज पाकर धन्य हो जाय। स्थानकदेव पत्नीकी ये बातें सुनकर स्तम्भित रह गये। वे बोले—'प्रिये! अशुभ क्यों बोल रही हो? ऐसा कौन-सा रोग है? ज्वर है, उतर जायगा। अभी वैद्यराजको बुलाता हूँ।'

गजदेवीने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'स्वामिन्! अब वैद्यराजजी इस शरीरको नहीं उबार सकेंगे। मुझे मेरे भगवान्‌ने बुला लिया है। अब तो मैं आपकी चरण-रज ही चाहती हूँ। मुझे आज्ञा दीजिये। इसमें अशुभ क्या है? जीवन और मरण दोनों ही भगवान्‌के विधान हैं। जो जन्मा है, उसे मरना ही पड़ेगा। यदि जन्म शुभ है तो मृत्यु अशुभ क्यों है? मृत्यु न हो तो नवीन सुन्दर जन्मकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? पुरातनका संहार सुन्दर नवीन सृष्टिके लिये ही तो होता है। फिर मैं तो परम भाग्यवती हूँ, जो आपकी चरणधूलिको सिर चढ़ाकर आपके सामने जा रही हूँ और जा रही हूँ आपके अपने एवं अखिल ब्रह्माण्डोंके परमपति भगवान् श्रीकृष्णकी बुलाहटसे उनकी नित्य-सेवाधिकारिणी बनकर। मेरा जन्म-

जीवन आज सफल हो गया। आज इस जीवकी अनादिकालीन साध पूरी हो रही है। मेरी यही प्रार्थना है कि आप भी अपना जीवन भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य भजनमें लगा दीजिये। मुझे पता लग गया है कि आपपर भगवान् श्रीकृष्णकी बड़ी ही कृपा है।'

'जिसको तुम-सरीखी कृष्ण-भक्त पत्नी प्राप्त हुई, उसपर श्रीकृष्णकी कृपा क्यों न होगी? प्रिये! धन्य हो तुम—जो तुम्हारा जीवन भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अर्पित हो गया और मैं भी धन्य हूँ जो तुम्हारे संगसे मेरे हृदयमें पवित्र भावोंका प्रादुर्भाव हुआ और भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति मिली।' स्थानकदेवने गद्गद होकर कहा।

'अब आप पधारिये। हरदेवीको विदा कीजिये। जानेके पहले एक बार वह मुझसे मिल ले। आप निश्चय रखिये, मैं उसके विदा होनेके बाद ही शरीर त्याग करूँगी। आप निश्चिन्त होकर विवाहका काम कीजिये। मैं अपने भगवान्के श्रीचरणोंमें सुखसे पड़ी हूँ।'

स्थानकदेवका हृदय बदल चुका था। अब उनके मनमें शोक-विषाद कुछ भी नहीं रहा। भक्तिके उच्छ्वाससे उनका हृदय आनन्दसे भर रहा है। वे पत्नीकी मृत्युमें भगवान्का शुभ विधान देखकर प्रफुल्लित हो रहे हैं, उन्हें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता है कि यह मरकर इससे कहीं अच्छी स्थितिको—नहीं-नहीं, परम और अनन्त महासुखकी दुर्लभ स्थितिको प्राप्त करने जा रही है। इसका यह मरण इसके लिये बड़ा ही मंगलमय है। इस अवस्थामें ऐसा कौन आत्मीय होगा, जो अपने आत्मीयकी ऐसी कल्याणकारिणी मृत्युसे प्रसन्न न हो? अतएव वे हर्षित चित्तसे वहाँसे उठकर चले आये और पुत्री हरदेवीकी विदाईके

काममें लग गये। हरदेवीसे कह दिया कि 'तेरी माँ पूजा-मन्दिरमें तुझे बुला रही है।'

पिताकी बात सुनकर हरदेवी तुरंत माताके पास गयी। माताको ज्वराक्रान्त देखकर उसे बड़ी चिन्ता हुई। वह माँके पास बैठ गयी। उसने देखा—माँ मुसकरा रही है, उसका चेहरा खिल रहा है और एक प्रकाशका मण्डल उसके चारों ओर छाया हुआ है। इतनेमें माताने बड़े दुलारसे हरदेवीका हाथ अपने हाथमें लेकर कहा—'बेटी! तू जानती है, यह संसार असार है—श्रीकृष्णका भजन ही इसमें एकमात्र सार है। मैं आज इस असार संसारको छोड़कर श्रीकृष्णकी सेवा करने उनके परमधाममें जा रही हूँ। श्रीकृष्णने स्वयं मुझको बुलाया है। तू यह न समझना, मैं तुझे असहाय छोड़ जाती हूँ। तू जानती है—मनुष्यमें जो कुछ भी बुद्धि, विद्या, शक्ति, सामर्थ्य, तेज, प्रभाव आदि है, सब श्रीकृष्णका दिया हुआ है। उन्हीं श्रीकृष्णके हाथोंमें तुझे सौंपकर मैं जा रही हूँ। वे ही विश्वम्भर स्वयं तेरी सँभाल करेंगे। उनसे बढ़कर सँभाल करनेवाला और कौन होगा? मुझे अनुमति दे, मैं जाऊँ। बेटी! तुझे श्रीकृष्णकी पूजामें बड़ा आनन्द आता है। मुझे बुलाकर श्रीकृष्णने तेरे लिये बड़ी सुविधा कर दी है। अब इन भगवान्‌को तू ले जा। नियमित-रूपसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक इनकी पूजा किया करना। कभी कुछ कहने-सुननेकी आवश्यकता हो तो निस्संकोच इन्हींसे कहा करना। ये अवश्य तेरी बातें सुनेंगे और उसी समय उचित व्यवस्था भी कर देंगे। देख तो तेरे विश्वासके लिये ये अभी तेरी गोदमें चले आते हैं।'

इतना कहना था कि भगवान्‌की मूर्ति सिंहासनसहित आकाशमें चलकर हरदेवीकी गोदमें आ गयी। फिर क्या

था, हरदेवीको दृढ़ विश्वास हो गया और भगवत्प्रेरणासे माताके भावी वियोगका सारा शोक पलभरमें नष्ट हो गया। अब उसने माताकी प्रसन्नता, मुसकराहट और उसके तेजोमण्डलका मर्म समझा। उसने मन्त्रमुग्धकी तरह हँसते हुए कहा—'माँ! ऐसा ही होगा। मैं आजसे इनकी हो गयी और ये मेरे हो गये। अब मुझे विश्वास है कि तुम्हारी जगह ये ही तुमसे भी बढ़कर मेरी रक्षा करेंगे। तुम तो मेरे साथ नहीं जा सकती, परंतु ये तो नित्य मेरे पास रहेंगे। तुम आनन्दसे इनकी सेवामें जाओ। जब इन्होंने स्वयं तुमको अपने पास बुलाया है; तब तुम्हें रोकनेका पाप कौन कर सकता है? जाओ माँ, जाओ, भगवान्‌की सेवा करो। तुम धन्य हो, जो भगवान्‌की इतनी प्रियपात्र हो और मैं भी धन्य हूँ, जो मुझे तुम-जैसी सच्ची माताकी कोखसे पैदा होनेका सौभाग्य मिला है। माँ! मुझे आशीर्वाद देती जाओ कि मैं भी तुम्हारी ही तरह भजन कर सकूँ और अन्तमें उनकी सेवामें ले ली जाऊँ।'

गजदेवीने कहा—'बेटी! ऐसा ही होगा, अवश्यमेव ऐसा ही होगा। तू निश्चिन्त रह। हाँ, एक बात कहनी है—अन्तिम और सच्चा सम्बन्ध तो एकमात्र भगवान्‌का ही है, परंतु यह संसार भी भगवान्‌का है, इसलिये इसमें हमें सभी व्यवहार भगवान्‌की इच्छा और आज्ञानुसार ही करने चाहिये। अवश्य ही करने चाहिये अपने भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही। शास्त्र भगवान्‌की ही आज्ञा हैं और उनमें स्त्रीके लिये पति-सेवाको ही मुख्य धर्म बतलाया गया है। पतिके सम्बन्धसे सास-ससुरकी सेवा भी अवश्य करनी चाहिये। तू भगवान्‌की भक्त है, ध्यान रखना—इस व्यवहारमें कोई त्रुटि न आने पावे। ***'जस काछिअ***

तस चाहिअ नाचा।' सदाचार, सादगी, सेवा, सहिष्णुता और संयम तो सभीके लिये आवश्यक हैं। भक्तके लिये तो ये सर्वथा स्वाभाविक होने चाहिये।

'माता! ऐसा ही होगा। लाख दुःख उठानेपर भी तुम्हारी यह बेटी अपने कर्तव्यसे कभी नहीं डिगेगी।' हरदेवीने दृढ़ता और उल्लासके साथ कहा।

'बेटी! बड़ी-बड़ी परीक्षाएँ होती हैं। बड़े-बड़े भयके प्रसंग आते हैं। भगवान्पर आस्था रखोगी तो उनकी कृपाशक्तिसे तेरा व्रत अनायास ही निभ जायगा और तू अपने परम लक्ष्य भगवान्को प्राप्त करके कृतार्थ हो जायगी। बेटी! मैं हृदयसे आशीर्वाद देती हूँ कि तेरा मन सदा श्रीभगवान्के चरण-कमलोंका चंचरीक बना रहे और तू कभी भी उनकी कृपासे वंचित न हो।'

'माँ! मेरी माँ! मैं अत्यन्त बड़भागिनी हूँ, जो तुम्हारी बेटी हूँ। ऐसी माँ कितनी हैं, जो अपनी संतानको श्रीभगवान्के चरणोंकी भक्ति करनेका आदेश और आशीर्वाद देती हैं?'—हरदेवीने आँसू बहाते हुए कहा।

धन्य है माता और पुत्री दोनोंको! सचमुच वही माता माता है—पिता पिता है, जो अपनी संतानको भगवान्के शुभ मार्गपर चलाता है और उसको अग्रसर करनेमें सब प्रकारकी सहायता करता है। अस्तु।

हरदेवीको उसके पिताने बुला लिया। वह भगवान्के सिंहासनको लेकर चली गयी। सिंहासनको सुरक्षित स्थानमें पधराकर उसने माताके पास कई चतुर और स्वामिभक्त सेविकाओंको भेज दिया, जो प्रसन्नतासे उसकी यथायोग्य सेवा करने लगीं। यद्यपि विदाईके दिन माताके बीमार और मरणासन्न

हो जानेपर हरदेवीको जगत्‌की चालके अनुसार बहुत शोक होना चाहिये था और हरदेवीके पिता स्थानकदेवके लिये भी यह कम चिन्ताका प्रसंग नहीं था, परंतु भगवदिच्छासे दोनोंके ही हृदय बदल चुके थे। वे गजदेवीके भगवान्‌के परमधाम गमनकी खुशीमें मस्त थे और स्वयं भी उन दोनोंके हृदयोद्यानमें भक्ति-लतिका लहलहा रही थी तथा अपने मधुर पुष्पोंके सुन्दर सौरभसे क्षण-क्षणमें उन्हें मुग्ध कर रही थी। वे विवाहका कार्य तो मानो परवश—किसीकी प्रेरणासे कर रहे थे। सब कार्य भलीभाँति सम्पन्न हुए। हरदेवीके विदा होनेका समय आ गया। उसने एक बार फिर माताके श्रीचरणोंमें जाकर प्रणाम किया और उसका आशीर्वाद प्राप्त करके पिताके चरणोंमें गिरकर रथमें सवार हो गयी। भगवान्‌के सिंहासनको अपनी गोदमें ले लिया। कन्याकी माताकी अनुपस्थिति दोनों ओरके सभी बरातियोंको बहुत ही खल रही थी और वे सभी उदास-से हो रहे थे।

कन्या विदा हो गयी। स्थानकदेव तुरंत गजदेवीके पास चले आये। थोड़ी देर बाद गजदेवीने हँसते-हँसते भगवान्‌के पावन नामोंका उच्चारण करते हुए पतिके चरणोंमें सिर रखकर नश्वर शरीरको छोड़ दिया। उस समय उसके शरीरसे दिव्य तेज निकलता हुआ दिखायी दिया और आकाशसे मधुर शंखध्वनि सुनायी पड़ी। स्थानकदेवने श्रद्धापूर्वक एवं विधिवत् पत्नीका अन्त्येष्टिसंस्कार और श्राद्धादि कर्म किये।

(२)

हरदेवीके ससुर गुणदेव वास्तवमें सद्‌गुणोंके घर थे। पिताकी भाँति पुत्र हर्षदेव भी बहुत अच्छे स्वभावका था, परंतु हर्षदेवकी माता समलाका स्वभाव बड़ा ही क्रूर था। वह मौका

पाते ही हरदेवीके साथ निर्दय व्यवहार करती थी; परंतु ससुरके अच्छे स्वभावके कारण हरदेवीको कोई खास कष्ट नहीं था।

दैवकी गति विचित्र है। डेढ़ सालके बाद सेठ गुणदेवका देहान्त हो गया। अब तो समला सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र हो गयी। वह जो चाहती सो करती। यद्यपि हर्षदेवका स्वभाव सुन्दर और सौम्य था; परन्तु वह संकोचवश माताके सामने कुछ भी बोलना नहीं चाहता था। इससे समलाका मन और भी बढ़ गया, वह पुत्रको अपने पक्षमें मानकर बहूको विशेषरूपसे सताने लगी। पहननेको अच्छे कपड़े न देना, खानेको रूखी-सूखी रोटियाँ देना, वह भी भरपेट नहीं, बात-बातपर झिड़कना, हरेक काममें दोष निकालना, उसके माता-पिताको गालियाँ बकना आदि बातें तो उसके लिये स्वाभाविक थीं। कभी-कभी तो वह हाथ भी उठा लेती थी। उसने बर्तन माँजने और झाड़ू देनेवाले नौकरको अलग कर दिया, आटा पीसनेवाली नौकरानीको जवाब दे दिया; इसीलिये कि ये सब काम हरदेवीसे कराये जायँ। हरदेवीको किसी भी कामसे कोई इनकार नहीं था, न उसे किसी बातका मनमें दुःख ही था। वह माताकी बात याद करके चुपचाप हर्षित मनसे सब कुछ सहन करती। परंतु अत्यन्त सुखमें पली होने तथा बर्तन माँजने और आटा पीसने आदिका अभ्यास न होनेके कारण उसे स्वाभाविक ही शारीरिक थकावटका अनुभव तो होता ही था, पर वह उससे दुःखी नहीं होती थी। मनमें सोचती थी, भगवान् मेरी परीक्षा लेते हैं। फिर यह दृढ़ निश्चय करती कि मैं इस परीक्षामें भगवान्‌की कृपासे कभी भी अनुत्तीर्ण नहीं होऊँगी। कितना भी दुःख आये—भगवान्‌का आशीर्वाद समझकर उसे सिर

चढ़ाऊँगी और कभी मन मैला न होने दूँगी। वह ऐसा ही करती। सासकी झिड़कन और गालियाँ उसे दुलार और आशीर्वाद-सी जान पड़तीं। वह अम्लान मनसे सब काम किया करती। तन-मनसे पतिकी सेवा करती और नित्य नियमसे श्रीभगवान्‌की पूजा करती। पूजाके बाद यही प्रार्थना करती कि भगवन्! मैं तुम्हारी हूँ, मुझे कभी बिसारना नहीं। तुम्हारी मंगलमयी इच्छा पूर्ण हो, इसीमें मेरा मंगल है, वह कभी भगवान्‌के सामने सासके अत्याचारोंके लिये रोती नहीं। न कभी पतिसे ही सासकी शिकायत करती।

हर्षदेवको निर्दोष और परम शीलवती पत्नीके प्रति अपनी माताका इस प्रकारका क्रूर बर्ताव देखकर बड़ा दुःख होता था। उसने एक दिन एकान्तमें हरदेवीसे कहा—'प्रिये! तुम मानवी नहीं हो, तुम तो स्वर्गकी देवी हो। तुमपर जान-बूझकर इतना अत्याचार होता है; परंतु तुम कभी चूँतक नहीं करती। मैंने तुम्हारे चेहरेपर भी कभी उदासी नहीं देखी—मानो कुछ होता ही नहीं। तुमने कभी आजतक मुझसे इस सम्बन्धमें एक शब्द भी नहीं कहा। परंतु प्रिये! मेरा हृदय जला जा रहा है। अब यह जुल्म मुझसे देखा नहीं जाता। मैं आजतक कुछ नहीं बोला; परंतु अब तो हद हो गयी है। तुम्हारी राय हो तो हमलोग यहाँसे और कहीं चले जायँ या माताको ही अलग कर दें।'

'मेरे हृदयेश्वर! आप जरा भी दुःख न करें। मैं सच कहती हूँ, मुझे तनिक भी कष्ट नहीं है। मैं प्रतिदिन दोनों समय जब अपने भगवान्‌की पूजा करती हूँ, तब मुझे इतना आनन्द मिलता है कि उसमें जीवनभरके बड़े-से-बड़े संताप अनायास ही अपनी सत्ता खो देते हैं। फिर आपकी सेवाका जो आनन्द है वह तो मेरे प्राणोंका आधार है ही। मैं बहुत सुखी हूँ,

प्राणनाथ! आपके चरणोंमें रहकर। मुझे किसी प्रकारका संताप नहीं है। माताजी अपने स्वभाववश जो कुछ कहती-करती हैं, इससे वस्तुतः उन्हींको कष्ट होता है। सच मानिये, स्वामिन्! झिड़कन, अपमान और गाली आदि उन्हींको मिलते और जलाते हैं, जो इनको ग्रहण करते हैं। मैं इन्हें लेती ही नहीं। कभी लेती भी हूँ तो आशीर्वादरूपसे। फिर मेरे लिये ये दुःखदायी क्यों होने लगे? हाँ, कभी-कभी इस बातका तो मुझे दुःख अवश्य होता है कि मैं माताजीके दुःखमें निमित्त बनती हूँ। आप कोई चिन्ता न करें! संसारमें सब कुछ हमारे भगवान्‌के विधानसे हमारे मंगलके लिये ही होता है। मुझे इस बातका विश्वास है, इसीसे मैं सदा प्रसन्न रहती हूँ।

नाथ! न तो माताजीको छोड़कर अलग जानेकी आवश्यकता है, न उन्हें अलग करनेकी। हमलोग यदि उनकी बातें न सहकर इस बुढ़ापेमें उन्हें अकेली छोड़ देंगे तो उनकी सेवा कौन करेगा? सबसे अधिक दुःखकी बात तो यह होगी कि हम माताजीकी सेवाके सौभाग्यसे वंचित हो जायँगे। वह संतान बड़ी ही अभागिनी है, जिसको अपने बूढ़े माता-पिताकी सेवा करनेका सुअवसर नहीं मिलता और उसके दुर्भाग्य तथा दुष्कर्मका तो कहना ही क्या है कि जो किसी भी प्रतिकूलताके कारण माता-पिताकी प्राप्त हुई सेवाको छोड़ बैठता है। फिर वे बेचारी कहती ही क्या हैं, मुझे तो आजतक कभी उनकी कोई भी बात बुरी नहीं लगी। सासकी सीखभरी झिड़कन सहना तो बहूका सौभाग्य है।'

हरदेवीकी बात सुनकर हर्षदेवका हृदय गद्‌गद हो गया। उसके चित्तमें हरदेवीके प्रति बड़ी भक्ति उत्पन्न हो गयी और वह अपनेको धन्य मानने लगा ऐसी धर्मशीला पत्नी पाकर!

उसने कहा—'देवि! इसीसे तो मैं कहता हूँ, तुम मानवी नहीं हो। तुम्हारे इन ऊँचे भावोंके सामने किसका मस्तक नहीं झुक जायगा? तुम धन्य हो! तुम्हारे माता-पिता धन्य हैं, जिनके घर तुम-सरीखी देवीने अवतार लिया। तुम्हारी एक-एक बात अनमोल है। परंतु क्या करूँ, जब माताजी बिना किसी कसूरके जान-बूझकर तुम्हें गालियाँ बकती हैं और बाघिनकी तरह मारने-काटने दौड़ती हैं, तब यद्यपि मैं आजतक कुछ बोला नहीं परंतु मुझे बड़ा दुःख होता है। मन होता है कि इस अन्यायका खुलकर विरोध करूँ, परंतु कुछ तो माताजीके संकोचसे रुक जाता हूँ और कुछ तुम्हारा यह दैवी स्वभाव मुझे रोक देता है। जो कुछ भी हो कल मैं उनसे प्रार्थना अवश्य करूँगा। इतना कहकर हर्षदेव चला गया। हरदेवी कुछ कहना चाहती थी, परंतु उसे अवसर ही नहीं मिला।

दूसरे दिन हरदेवी बर्तन माँज रही थी। कुछ पुराने जंग लगे हुए बर्तन उसे माँजनेको सासने दिये थे। जंग रगड़-रगड़कर उतारनेमें देर लगी। इतनेमें सास समला लाल-पीली हो गयी और अनाप-शनाप गालियाँ बकने लगी। इसी बीचमें हर्षदेव वहाँ आ गया। उसको माताका यह बर्ताव बुरा मालूम हुआ। उसने नम्रतासे माताको समझानेकी चेष्टा की तो उसका गुस्सा और भी बढ़ गया। अब वह हर्षदेवको भी बुरा-भला कहने लगी। हर्षदेवको बहुत दुःख हुआ; परंतु वह हरदेवीके शील-स्वभावके संकोचसे कुछ भी बोला नहीं। जब दूसरा पक्ष कुछ भी नहीं बोलता तब पहले पक्षको बकबकाकर स्वयं ही चुप हो जाना पड़ता है। समला जब बोलते-बोलते थक गयी, तब अपने-आप ही चुप हो गयी। हर्षदेव विषादभरे हृदयसे बाहर चला गया। हर्षदेवका विषाद देखकर हरदेवीको दुःख

हुआ। वह सारा काम निपटाकर अपने भगवान्‌के पूजा-मन्दिरमें गयी और वहाँ जाकर भगवान्‌से कातर प्रार्थना करने लगी। उसने कहा—

'भगवन्! मैंने कभी कुछ भी नहीं चाहा, आज पतिदेवको उदास देखकर एक चाह उत्पन्न हुई है, वह यह कि मेरी सासका स्वभाव सात्त्विक बना दिया जाय। वे समय-समयपर झल्लाकर हमलोगोंके साथ ही आपको भी बुरा-भला कह बैठती हैं। प्रभो! इस अपराधके लिये उन्हें क्षमा किया जाय। इसीके साथ—नाथ! मेरी चिरकालकी आकांक्षा है कि मैं आपके दिव्य स्वरूपके साक्षात् दर्शन करूँ। मेरे मनमें यह चाह तो थी ही, इस समय प्रार्थना करते-करते पता नहीं क्यों मेरी यह चाह अत्यन्त प्रबल हो गयी है। प्रभो! आप अन्तर्यामी हैं, घट-घटकी जानते हैं। यदि मेरी सच्ची चाह है, यदि वास्तवमें आप मेरी इस प्रकारकी तीव्र व्याकुलताको समझते हैं कि अब आपको प्रत्यक्ष देखे बिना मेरा जीवन असम्भव है तो कृपा करके मुझे दर्शन दीजिये। आप सर्वसमर्थ हैं, मैं अत्यन्त दीन-हीन और मलिनमति हूँ, मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं। आपकी भक्तिका तत्त्व भी मैं नहीं जानती। इतना ही जानती हूँ कि आप मेरे सर्वस्व हैं और मैं आपकी हूँ। आपके सिवा मेरे और कोई भी सहारा नहीं है। संसारके सब कार्य आपकी प्रसन्नताके लिये—आपके लिये ही करने हैं। पतिके द्वारा मैं आपकी ही उपासना करती हूँ। मुझे उसके बदलेमें आपकी प्रसन्नताके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहिये। यदि यह सत्य हो तो आप कृपा करके दर्शन दीजिये।'

यों कहकर हरदेवी कातरभावसे रोने लगी। उसकी घिग्घी बँध गयी, गला रुक गया, बोली बंद हो गयी। भगवान् अब

नहीं रह सके। वहीं अपने विग्रहके सामने ही प्रकट हो गये—बड़ी मनोहर मंजुल शोभा धारण किये हुए। नील-श्यामवर्ण है। गलेमें रत्नोंकी माला है, कर-कमलोंमें मुरली है, होठोंपर मधुर मुसकान है, नेत्रोंसे कृपा और प्रेमकी सुधा-धारा बह रही है। सौन्दर्य और माधुर्यकी अप्रतिम छबि है। हरदेवी भगवान्‌को सामने देखकर आनन्दसागरमें डूब गयी, वह कुछ भी बोल नहीं सकी। तब श्रीभगवान्‌ने कहा—'बेटी! मैं तुझपर अति प्रसन्न हूँ। तूने अपने आचरणोंसे और अकृत्रिम भक्तिसे मुझे वशमें कर लिया है। तेरी सासका स्वभाव सुधरना तो तभी निश्चय हो गया था, जब तू वधू बनकर उसके घर आयी थी। अब तो तेरी कृपासे वह असाधारण भक्त बन गयी है। तूने अपने पति और सास—दोनोंका उद्धार कर दिया। तेरा ससुर तो पहले ही तेरे प्रतापसे सद्‌गतिको प्राप्त हो चुका था। अब मेरी कृपासे तुम तीनों मेरी भक्ति करते हुए सुन्दर सदाचारपूर्ण जीवन बिताओगे और अन्तमें मेरे परमधाममें आकर मेरी सेवाका अधिकार प्राप्त करोगे।'

इतना कहकर भगवान् सहसा अन्तर्धान हो गये। हरदेवी स्तब्ध थी, उसका मन मुग्ध हो रहा था। इतनेमें उसने देखा—सास समला पास खड़ी है और रो-रोकर भगवान्‌से क्षमा-प्रार्थना कर रही है। हरदेवी उठी। सास अपने दोषोंका वर्णन करते हुए उससे क्षमा माँगने लगी। हरदेवीने सकुचाकर सासके चरण पकड़ लिये। समलाने उसे उठाकर हृदयसे लगा लिया। दोनोंके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहने लगे। हर्षदेव घर लौटा तो माताकी ऐसी बदली हुई हालत देखकर आनन्दमग्न हो गया। तीनोंकी जीवनधारा एक ही परम लक्ष्यकी ओर जोरसे बहने लगी। एक लक्ष्य, एक साधन, एक मार्ग। मानो एक ही जगह

जानेवाले तीन सहयोगी यात्री बड़े प्रेमसे एक-दूसरेकी सहायता करते हुए आगे बढ़ रहे हों। अड़ोस-पड़ोसपर भी तीनोंके प्रेमका बड़ा प्रभाव पड़ा। इतना ही नहीं, उनके आचरणसे सारे नगरके नर-नारी सदाचारी और भगवद्भक्त बनने लगे!

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्तिमती निर्मला

निर्मला सचमुच बहुत ही निर्मल थी। कलियुगकी कालिमाएँ उसे छू नहीं गयी थीं। वह दिव्यलोककी देवी वैराग्यकी जीती-जागती प्रतिमा और भगवद्भक्तिका सजीव विग्रह थी। उसका मुखमण्डल जैसा सुन्दर और भोला-भाला था, उसका अन्त:करण उससे भी कहीं अधिक मनोहर और सरल था। संसारकी किसी भी वस्तुमें उसका मन फँसा नहीं था। उसको किसी भी चीजकी चाह नहीं थी और कहीं भी उसकी सीमाबद्ध गंदी ममता नहीं थी। वह अपने प्राणाराम राममें अनुरक्त थी, राम ही उसकी चाहके एकमात्र लक्ष्य थे और समस्त विश्वमें व्याप्त विश्वातीत रामके ही पावन चरणोंमें उसकी ममता थी। सदा प्रसन्न रहना उसका स्वभाव था। मोटी, साफ, सफेद साड़ी, सफेद कब्जा, गलेमें तुलसीजीकी माला, मस्तकपर सफेद चन्दन और जीभपर नित्य नाचनेवाला रामनाम—यही उसका स्वाभाविक शृंगार था। हृदयमें रामका ध्यान, मुँहमें रामका नाम और शरीरसे दिनभर रामकी भावनासे घरभरकी छोटी-बड़ी सब तरहकी सेवा—यही उसका मन, वाणी, शरीरका काम था। वह कभी न थकती थी, न ऊबती थी, न झल्लाती थी। शान्ति, प्रसन्नता, आनन्द, मुसकान मानो भगवान्‌की देनके रूपमें सदा उसकी सेवा करते थे। वह रातके पिछले पहर उठती। शौच-स्नानके बाद छ: बजेतक रामजीकी मूर्तिके सामने बैठकर ध्यान-पूजन और रामायणका पाठ करती; फिर काममें लग जाती। दुपहरको एक समय बिना मसालेका सादा भोजन करती, जीभके स्वादको उसने जीत लिया था। चार घड़ी रात बीतनेपर उसका काम पूरा होता, तब जमीनपर टाट बिछाकर उसपर कुशका आसन

डालकर बैठ जाती और प्रातःकालकी भाँति ही रामजीका ध्यान-पूजन करती। एक पहर रात बीत जानेपर कुशका आसन उठाकर उसी टाटपर रामजीके चरणोंमें उनके नामका स्मरण करती हुई सो जाती। जाड़ेमें भी उसका यही नियम चलता। उन दिनोंके लिये वह एक रूईदार कब्जा और ऊनी कम्बल और रखती।

× × × × ×

पण्डित विश्वनाथ गौड़ ब्राह्मण थे तो गुजरातके, परंतु काशीमें जाकर बस गये थे। विश्वनाथके पास भोग-विलासके लिये धन तो नहीं था, परंतु भगवान्‌की कृपासे उनके घर किसी बातकी कमी नहीं थी। वे बड़े विद्वान् थे। लोगोंमें उनका बड़ा आदर था। उनकी संस्कृत-पाठशाला थी। वे विद्यार्थियोंको बड़े चावसे व्याकरण, न्याय और मीमांसा आदि दर्शनोंकी शिक्षा देते थे। बड़े विलक्षण व्याकरणी तथा दर्शनशास्त्रके महान् पण्डित होनेपर भी उनके हृदयप्रांगणमें भक्तिदेवी सदा नाचती रहती थीं। वे संध्याके समय नित्यप्रति वाल्मीकीयरामायणकी बड़ी ही सुन्दर कथा बाँचते थे। जो एक बार उनकी कथा सुन लेता, वह फिर उसे कभी न छोड़ता। उनकी वाणीमें बड़ा मधुर रस था, समझानेकी सुन्दर शैली थी और उससे पवित्र भावोंकी अखण्ड धाराएँ बहती रहती थीं। कथा बाँचते-बाँचते वे गद्‌गद हो जाते, कभी-कभी तो रो पड़ते। श्रोताओंकी भी यही दशा होती। घरमें सदाचारिणी ब्राह्मणी थी। पतिकी भाँति पत्नी भी रामजीकी भक्त थीं। निर्मला उन्हींकी एकमात्र पुत्री थी। वह बचपनसे ही कथा सुनने लगी थी। पिता-माता दोनों भक्त थे। इससे बचपनमें ही निर्मलाके निर्मल हृदय-सरोवरमें भक्ति-लता लहराने लगी थी। पितासे

उसने भगवान् रामकी पूजा-पद्धति सीख ली थी। बड़ी होनेपर पिताने बड़ी धूमधामसे निर्मलाका ब्याह किया। निर्मला पण्डितजीकी एकमात्र संतान थी। इससे उनके भक्तोंने निर्मलाके विवाहमें बड़ी उदारता और उमंगके साथ धन खर्च किया। वर भी बड़ा सुशील, सुन्दर और सदाचारी था। उसका नाम गुलाबराय था। सचमुच वह गुलाब-सा सुन्दर था और अपने सद्‌गुणोंकी सुगन्धसे सबको सुखी करता था। विधाताका विधान कोई टाल नहीं सकता। सालभरके बाद ही हैजेसे उसका देहान्त हो गया। विश्वनाथपर मानो वज्रपात हुआ। उनका हृदय आकुल हो उठा, परंतु प्रभु रामजीकी भक्तिने उनको सँभाला। आकुलतामें ही उनका मन रामजीके चरणोंमें चला गया। विश्वनाथजी रो-रोकर मानसिक भावोंसे रामजीकी पूजा करने लगे। प्रभु रामजीने भक्तपर कृपा की। वे अपने संतसुखदायी सर्वदुःखहारी मंगलमय युगलस्वरूपमें दिव्य सिंहासनसहित प्रकट हो गये और भक्त विश्वनाथजीको ढाढ़स बँधाते हुए बोले—'भैया विश्वनाथ! इतने आतुर क्यों हो रहे हो? जानते नहीं हो मेरा प्रत्येक विधान मंगलमय होता है। निर्मलाको यह वैधव्य तुम्हारे और उसके कल्याणके लिये ही प्राप्त हुआ है। सुनो! पूर्वजन्ममें भी तुम सदाचारी ब्राह्मण थे। वहाँ भी निर्मला तुम्हारी कन्या थी। तुम्हारा नाम था जगदीश और निर्मलाका नाम था सरस्वती। तुममें और सरस्वतीमें सभी सद्‌गुण थे, परंतु तुम्हारे पड़ोसमें एक क्षत्रियका घर था; वह बड़ा ही दुष्टहृदय था। वह मनसे बड़ा कपटी, हिंसक और दुराचारी था, परंतु ऊपरसे बहुत मीठा बोलता था। वह बातें बनानेमें बहुत चतुर था। सद्‌गुणी होनेपर भी उसके कुसंगसे तुम्हारे हृदयपर कुछ कालिमा आ गयी थी, वह सरस्वतीको कुदृष्टिसे देखता था। उसके बहकावेमें

आकर सरस्वतीने अपने पतिका घोर अपमान किया था और तुमने उसका समर्थन किया था। सरस्वतीके पतिने आकुल होकर मन-ही-मन सरस्वतीको और तुमको शाप दे दिया था। यद्यपि उसके लिये यह उचित नहीं था, परंतु दुःखमें मनुष्यको चेत नहीं रहता। उसी शापके कारण निर्मला इस जन्ममें विधवा हो गयी है और तुम्हें यह संताप प्राप्त हुआ। पतिके तिरस्कारके सिवा सरस्वतीका जीवन बड़ा पवित्र रहा। उसने दुराचारी पड़ोसीके बुरे प्रस्तावको ठुकरा दिया। जीवनभर तुलसीजीका सेवन, एकादशीका व्रत और राम-नामका जप करती रही। तुम इसमें उसके सहायक रहे। इसीसे तुमको और उसको दूसरी बार फिर वही ब्राह्मणका शरीर प्राप्त हुआ है और मेरी कृपासे तुम दोनोंके हृदयमें भक्ति आ गयी है। मेरी भक्ति एक बार जिसके हृदयमें आ जाती है, वह कृतार्थ हुए बिना नहीं रहता। भक्तिका यह स्वभाव है कि एक बार जिसने उसको अपने हृदयमें धारण कर लिया उसको वह मेरी प्राप्ति कराये बिना नहीं मानती। बड़ी-बड़ी रुकावटोंको हटाकर, बड़े-बड़े प्रलोभनोंसे छुड़ाकर वह उसे मेरी ओर लगा देती है और मुझे ले जाकर उसके हृदयमें बसा देती है। मैं भक्तिके वश रहता हूँ—यह तो प्रसिद्ध ही है। तुम लोगोंपर जो यह दुःख आया है यह भक्तिदेवीकी कृपासे तुम्हारे कल्याणके लिये ही आया है। यह दुःख तुम्हारे सारे दुःखोंका सदाके लिये नाश कर देगा।' इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

विश्वनाथ विचित्र स्वप्न देखकर जगे हुए पुरुषकी भाँति चकित-से रह गये। इतनेमें ही निर्मला सामने आ गयी। निर्मलाको देखकर विश्वनाथका हृदय फिर भर आया। उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। वे दुःसह मर्मपीड़ासे पीड़ित हो गये,

परंतु निर्मलाकी साधना बहुत ऊँची थी। वह अपने वैधव्यको हालतको खूब समझती थी, परंतु वह साधनाकी जिस भूमिकापर स्थित थी, उसपर वैधव्यकी भीषणताका कुछ प्रभाव नहीं था। उसने कहा—पिताजी! आप विद्वान्, ज्ञानी और भगवद्भक्त होकर रोते क्यों हैं? शरीर तो मरणधर्मा है ही। जड पंचभूतोंसे बने हुए शरीरमें तो मुर्दापन ही है! फिर उसके लिये शोक क्यों करना चाहिये? यदि शरीरकी दृष्टिसे ही देखा जाय तो स्त्री अपने स्वामीकी अर्धांगिनी है। उसके आधे अंगमें वह है और आधे अंगमें उसके स्वामी हैं। इस रूपमें स्वामीका बिछोह कभी होता ही नहीं। सती स्त्रीका स्वामी तो सदैव अर्धांगरूप उसके साथ मिला हुआ ही रहता है। अतएव सती स्त्री वस्तुतः कभी विधवा होती ही नहीं। वह विलासके लिये विवाह नहीं करती, वह तो धर्मतः पतिको अपना स्वरूप बना देती है। ऐसी अवस्थामें—पृथक् शरीरके लिये रोनेकी क्या आवश्यकता है? इसके अतिरिक्त सबसे महत्त्वकी बात तो यह है कि सारा जगत् ही प्रकृति है, पुरुष—स्वामी तो एकमात्र भगवान् श्रीरघुनाथ ही हैं। श्रीरघुनाथजी अजर, अमर, नित्य, शाश्वत, सनातन, अखण्ड, अनन्त, अनामय, पूर्ण पुरुषोत्तम हैं। प्रकृति कभी उनके अंदर सोती है, कभी बाहर उनके साथ खेलती है। प्रकृति उनकी अपनी ही स्वरूपा शक्ति है। इस प्रकृतिसे पुरुषका वियोग कभी होता ही नहीं। पुरुषके बिना प्रकृतिका अस्तित्व ही नहीं रहता। अतएव हमारे रघुनाथजी नित्य ही हमारे साथ हैं। आप इस बातको जानते हैं, फिर आप रोते क्यों हैं; कर्मकी दृष्टिसे देखें तो जीव अपने-अपने कर्मवश जगत्में जन्म लेते हैं, कर्मवश ही सबका परस्पर यथायोग्य संयोग होता है, फिर

कर्मवश ही समयपर वियोग हो जाता है। कर्मजनित यह सारा सम्बन्ध अनित्य, क्षणिक और मायिक है। यह नश्वर जगत् संयोग-वियोगमय ही तो है, यहाँपर नित्य क्या है? इस संयोग-वियोगमें हर्ष-विषाद क्यों होना चाहिये।

'फिर, भगवान्‌का भक्त तो प्रत्येक बातमें भगवान्‌के मंगलमय विधानको देखकर, विधानके रूपमें स्वयं विधाताका स्पर्श पाकर प्रफुल्लित होता रहता है। चाहे वह विधान देखनेमें कितना ही भीषण क्यों न हो जाय। अतएव पिताजी! आप निश्चय मानिये—भगवान्‌ने हमारे परम मंगलके लिये ही यह विधान किया है, जो जगत्‌की दृष्टिमें बड़ा ही अमंगलरूप और भयानक है। आप निश्चिन्त रहिये, हमारा परम कल्याण ही होगा।'

निर्मलाके दिव्य वचन सुनकर विश्वनाथजीकी सारी पीड़ा जाती रही। उन्होंने कहा—'बेटी! तू मानवी नहीं है, तू तो दिव्यलोककी देवी है। तभी तेरे ऐसे भाव हैं। तूने मुझको शोकसागरसे निकाल लिया। मैं धन्य हूँ, जो तेरे पिता कहलाने योग्य हुआ हूँ।'

तभीसे निर्मला पिताके घर रहने लगी और माता-पितासहित अपना जीवन भगवान्‌के भजनमें बिताने लगी। घरमें श्रीरघुनाथजीका विग्रह था। माता-पिता तथा श्रीरघुनाथजीकी सेवा करना ही उसका काम था। घरका काम करते समय भी उसका मन भगवान्‌में लगा रहता। भगवान्‌का संग उसके जीवनका जीवन बन गया था। वह कुछ भी करती, किसी भी काममें रहती, स्वाभाविक ही भगवान्‌के साथ रहती। भगवान्‌के बिना वह रह ही नहीं सकती।

कुछ समय बाद उसके माता-पिता दोनों एक ही दिन भगवान्‌का स्मरण करते हुए संसारसे विदा हो गये। वह रोयी

नहीं। भगवान्‌के नित्य सान्निध्यने उसके जीवनको निर्भय, रसमय, आनन्दमय, संयोगमय, चिन्मय और भगवन्मय बना दिया था। किसी भी बाहरी अवस्थाका उसकी इस नित्य-स्थितिपर असर नहीं पड़ता था। माता-पिताकी यथोचित क्रिया करनेके बाद वह घर छोड़कर गंगातीरपर कुछ दूर चली गयी। उस समय काशीका गंगातट तपोभूमि थी। वहाँ उसने माँ भागीरथीके पावन तटपर तीस साल भगवान्‌के ध्यानमें बिताये और अन्तमें शरीरको गंगा-मैयाकी गोदमें छोड़कर भगवान् शंकरकी कृपासे वह भगवान् श्रीरामजीके दिव्य साकेतमें पहुँचकर उनकी नित्यचर्यामें नियुक्त हो गयी।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

लीलावती

दोर्भ्यां दोर्भ्यां व्रजन्तं व्रजसदन-
जनाह्वानतः प्रोल्लसन्तं
मन्दं मन्दं हसन्तं मधुमधुरवचो
मेति मेति ब्रुवन्तम्।
गोपालीपाणितालीतरलितबलय-
ध्वान्तमुग्धान्तरालं
वन्दे तं देवमिन्दीवरविमलदल-
श्यामलं नन्दबालम्॥

अभी-अभी वह घुटनोंके बल चलना सीख रहा है। नन्हीं-नन्हीं प्यारी-प्यारी दो कोमल भुजाओंके सहारे जब वह यशोदाका लाड़ला लाल आँगनमें किलकारियाँ छोड़ते हुए चलता है तो देखनेवाले मन्त्रमुग्ध-से देखते ही रह जाते हैं। नन्दरानी उसे अपनी गोदमें छिपा लेना चाहती हैं; परंतु वह भला चुप बैठनेवाला है? कोई ग्वाल चुटकियाँ बजाकर उसे उधर बुलाता है, तो कोई ग्वालिनी तालियाँ बजाकर उसे उधर बुलाती है। वह प्रसन्न हो जाता है। मन्द-मन्द मुसकाता है, उस समय उसकी दो-दो दँतुलियाँ कितनी सुहावनी लगती हैं। मीठी-मीठी तोतली बोलीमें 'माँ', 'माँ' कहता है, कभी इधर चलता है, कभी उधर। कभी इस ओर देखता है, कभी उस ओर, कभी माँकी ओर झाँक लेता है। ताली बजा-बजाकर, चुटकियाँ बजा-बजाकर गोपियाँ उसे बुलाती हैं। ओ कन्हैया, ओ लल्ला, अरे भैया! इधर आ, इधर। तेरी चुम्मियाँ लूँ, बलैया लूँ। ताली और चुटकीके साथ उनके कंकण भी तो बज उठते हैं। क्यों, ये कंकण क्यों बज उठते हैं? और फिर कन्हैयाका क्या पूछना।

कंकणोंकी मधुर ध्वनिसे वह मन-ही-मन मुग्ध हो जाता है। बड़ा नटखट है न। शायद वह जानता है कि आज इनकी चुटकियोंपर मैं नाच रहा हूँ, कभी मेरी चुटकियोंपर ये नाचेंगी और वह नाच ऐसा-वैसा नहीं होगा। वह जानता है कि आज इनके बुलानेपर मैं दौड़ा आ रहा हूँ, कभी बिना बुलाये ही ये मेरे प्रणयपाशमें आप-ही-आप बँध जानेके लिये तरसेंगी, ललकेंगी। आज वह नाच रहा है कभी नचानेके लिये और कैसा है उसका सुन्दर रूप! निर्मल नील कमलके दलके समान कोमल, नीलमणिकी तरह प्रकाशमान और नीले मेघके समान रसभरा वह श्यामसुन्दर त्रिभुवन-मोहन नन्दनन्दन। उसके प्यारे-प्यारे चरणोंको चूमनेको बरबस जी करता है। उन लाल-लाल तलवोंकी रजको आँखोंमें लगानेके लिये हृदय ललकता है।

आज एक ऐसे ही ललकते हुए हृदयकी तस्वीर हमारी नजरोंके सामने नाच उठी है। चन्दननगरके पास एक छोटा-सा गाँव है मधुपुर। इसी गाँवमें लगभग दो सौ वर्ष पूर्व एक ब्राह्मण-दम्पति रहते थे, वास्तविक अर्थमें ब्राह्मण। नाम था नारायणकान्त और रत्नेश्वरी। गाँवमें एक संस्कृत-पाठशाला थी, उसीमें नारायणकान्त अध्यापनकार्य करते थे और यदृच्छासे जो कुछ प्राप्त हो जाता था, उसीमें पति-पत्नी सुखसे जीवन-यापन करते थे। आवश्यकताएँ कम थीं, जीवन सादा था। ब्राह्मणीने आँगनमें कपासके कुछ बिरवे लगा रखे थे। उनसे इतनी रूई हो जाती थी कि जिससे सूत कातकर ब्राह्मणी गाँवभरके अपने यजमानोंके लिये यज्ञोपवीत तैयार कर लेती थी। यही ब्राह्मणीका मनोरंजन भी था। ब्राह्मणदेवता जब पाठशाला जाते तो ब्राह्मणी चरखा लेकर बैठ जाती। चरखेसे

उधर दूधकी पतली धाराकी तरह सफेद सूत निकलता और इधर ब्राह्मणी मन-ही-मन गुनगुनाती—

मेरो मन रामहि राम रटै रे।

राम नाम जप लीजै मनुआँ कोटिक पाप कटै रे॥

संध्या-समय नारायणकान्त जब पाठशालासे लौटते तो रत्नेश्वरी ललककर उनके पास जाती, उनकी चादर और पोथी सँभाल लेती, दौड़कर जल लाती और उनके पैर धोकर आँचलसे पोंछ देती। इस कार्यमें उसे बड़ा सुख मिलता था। दिनभरके एकाकीपनको वह इस क्षणकी प्रतीक्षा और लालसामें सुखसे सह लेती। ब्राह्मणीको यदि दुःख था तो बस, एक बातका। वह यह कि उन्हें कोई संतान न थी। दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करते उन्हें कई वर्ष हो चुके थे। ब्राह्मणको अपने जीवनसे पूर्णतः संतोष था; क्योंकि वे भगवान्‌के विधानमें ही अपना परम मंगल मानते थे। ब्राह्मणीको भी अपने जीवनसे खीझ या वितृष्णा तो नहीं थी, परंतु हृदयके एक कोनेमें उदासीकी छाया अवश्य थी। वह संध्या-समय तुलसी-चौतरेपर जब घीका दीपक जलाने जाती तो प्रायः नित्य मन-ही-मन तुलसीके चरणोंमें अपना विषाद निवेदित करती। सोचती, कितना सुन्दर होता यदि हमें एक संतान होती। दिनभर मैं उसके साथ खेलती, शामको जब मैं तुलसी महारानीको दीप दिखाने आती तो वह पीछेसे मेरे अंचलका छोर पकड़े-पकड़े आता, माँ-माँ पुकारता और मैं उसे देखकर, उसे खिलाकर, उसके साथ खेलकर सुखी हो जाती। नारायणकान्तको स्वप्नमें भी अपने किसी अभावका स्मरण नहीं होता। वह सब प्रकार सुखी और निश्चिन्त थे। ब्राह्मणका परमधन संतोष है। यह उनके पास प्रचुरमात्रामें था।

परंतु ब्राह्मणीके हृदयकी उदासी अब हाहाकारके रूपमें पलटती गयी। एक दिन उसने बरबस अपने पतिसे प्रस्ताव कर ही दिया कि किसी साधु-फकीरसे उपाय पूछना चाहिये, जिसमें कोई संतान हो; नहीं तो हम दोनोंकी उम्र ढलती जा रही है। ब्राह्मणने उसकी बात सुनी-अनसुनी कर दी; कहा— 'कैसी पगली हो! कहीं साधु-फकीर संतान देते हैं? देनेवाले तो एकमात्र प्रभु श्रीहरि हैं। इसलिये धैर्य धारणकर उनकी इच्छामें सुख मानो। उन मंगलमयकी समस्त इच्छाओं और क्रियाओंमें हमारा परम मंगल भरा है। उनके प्रति कभी मन मैला न करो।' लेकिन ब्राह्मणीको इन बातोंसे शान्ति नहीं मिली। उसने तुरंत ही प्रेमभरे शब्दोंमें कहा, 'अच्छा तो फिर उसी प्रभु श्रीहरिके चरणोंमें ही क्यों न हम अपनी विनय सुनावें। सुनती हूँ, वे सबकी सुनते हैं। इस गाँवकी कई औरतोंने कहा है कि श्रीवैद्यनाथधाममें रहकर जो अनुष्ठान करता है, उसे या तो संतानका वरदान मिलता है या स्वप्न हो जाता है कि तुम्हें इस जन्ममें संतान नहीं होगी।' ब्राह्मणीका हठ कारगर हो गया। ब्राह्मणदेवताने यह स्वीकार कर लिया कि श्रीवैद्यनाथधाममें चलकर तपस्या की जाय।

वे दिन रेल, मोटर या वायुयानके नहीं थे। सैकड़ों मीलका लंबा रास्ता पाँव-पयादे तय करना था। सुतरां चन्दननगरसे श्रीवैद्यनाथधाम पहुँचते ब्राह्मण-दम्पत्तिको लगभग तीन महीने लग गये। श्रीवैद्यनाथधाममें पहुँचकर भगवान् वैद्यनाथके मन्दिरके पास ही ये लोग ठहरे। तपस्या शुरू हुई। चौबीस घंटेमें बस एक बार दोपहरको वे थोड़ा-सा दूध और फल लेते। नारायणकान्त श्रीगोपालसहस्रनामका पाठ करते और रत्नेश्वरी ध्यानसे सुनती। यह क्रम पूरे पाँच सप्ताह चला। पाँचवें सप्ताहकी

समाप्तिपर इन लोगोंने यथाशक्ति हवन तथा ब्राह्मण-भोजन कराया। रातको इन्हें स्वप्न हुआ कि अब तुमलोग घर लौट जाओ। आजके ग्यारहवें महीने तुम्हारे घर एक बहुत ही सुन्दर सुयोग्य धर्मशीला कन्या होगी। वह मैके और ससुराल दोनों ही कुलोंके लिये धर्मज्योति होगी। दूसरे दिन जागनेपर नारायणकान्त और रत्नेश्वरीके हृदयमें स्वप्नवाली बातसे आशाकी अमरवल्लरी लहलहा उठी। उन्होंने आनन्दके उल्लासमें मधुपुरकी ओर प्रयाण किया।

समय पाकर रत्नेश्वरीकी कोखसे एक कन्या उत्पन्न हुई। देवताके प्रसादस्वरूप इस कन्याके जन्म-समय गाँवभरमें खूब आनन्द-बधाइयाँ मनायी गयीं। नाम रखा गया लीलावती। लीलावती लीलावती ही थी। बचपनमें ही उसमें कई विलक्षण गुण पाये गये। रोती बहुत कम थी। ब्राह्मणदेवता सायं-प्रातः जब पूजामें बैठे होते तो वह चुपचाप उनके शालग्रामजीको निहारा करती। सायंसमय जब माँ तुलसी महारानीको दीप दिखाने जाती तो वह भी घुटनोंके बल तुलसी-चौतरेतक पहुँच जाती और माँके आँचलका छोर पकड़कर लड़खड़ाती हुई खड़ी हो जाती। माँ प्यारसे उसे गोदमें उठा लेती, उसीके हाथसे दीप रखाती और उसका मस्तक तुलसीके चौतरेपर झुकाकर मातासे यह आशीर्वाद माँगती कि यह अच्छे घर जाय और इसे सुन्दर निर्मल बुद्धि प्राप्त हो।

धीरे-धीरे लीलावती सयानी हुई, घरमें शालग्रामकी उपासना थी। स्नान-संध्यासे निश्चिन्त होकर पिता पूजामें बैठते। लीलावती फूल चुन लाती। माला गूँथ लेती और माला लेकर पिताके पास पहुँचती। नारायणकान्त नित्य नियमपूर्वक श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करते थे। लीलावती बैठे-बैठे ध्यानसे

सुनती। अनुष्टुप् छन्दके सीधे-सादे कई श्लोक उसे कण्ठस्थ हो गये; परंतु सबसे प्यारी और मीठी तो उसे लगती थी माँकी प्रातःकालीन नाम-धुन। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर माँ उसे अपनी गोदमें सुला लेती और बड़े ही मधुर स्वरसे श्रीहरिके नामोंका गायन करती—

हरे राम, हरे राम, हरे राम हरे। भज मन निशिदिन प्यारे॥
रघुपति राघव राजा राम। पतितपावन सीताराम॥
नारायण नारायण जय गोविन्द हरे।
नारायण नारायण जय गोपाल हरे॥
राधाकृष्ण जय कुंजविहारी। मुरलीधर गोवर्धनधारी॥
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव॥
राजा राम राम राम, सीता राम राम राम॥
जय राम जय राम जय जय राम।
श्रीराम जय राम जय जय राम॥

बाल-बच्चोंके लिये जमीन-जायदाद रख जानेवाले माँ-बाप कितने नहीं हैं, दुर्लभ तो हैं वे जो अपनी संततिके लिये भगवद्भक्तिकी सम्पत्ति छोड़ जाते हैं। नारायणकान्त तथा रत्नेश्वरीके प्यारमें भगवद्भक्ति लबालब भरी थी और इसी कारण लीलावतीकी जीवन-धारा भी सहज ही भक्तिकी ओर मुड़ती गयी। समय पाकर उसका विवाह हुआ और सौभाग्यसे उसे एक सुसम्पन्न परिवार मिला। कन्याको ससुराल भेजते समय माँका हृदय किस गम्भीर व्यथासे भर जाता है, यह माताका ही हृदय जानता है। शकुन्तला जब दुष्यन्तके घर जाने लगी थी तो तपोधन कण्वका हृदय भी छलछला आया था। उसी प्रकार आज नारायणकान्त और रत्नेश्वरीके हृदयमें अपार व्यथा थी। उसका घर फिर सूना हो जायगा, यह सोचते ही माँ

बिलखने लगती; परंतु तुरंत फिर स्मरण हो आता—बेटी तो दूसरेके ही घरकी शोभा है। आज मेरी लीला पतिके घर जा रही है। मैं इसे जाती देख दुःख क्यों मानूँ? अन्तमें विदाके समय माताने उसे हृदयसे लगाया, पिताने अशेष आशीर्वाद और प्यारकी वर्षा की।

× × × × ×

मगर, वाह रे दुनिया! बड़े-बड़े तुम्हारी चपेटमें आ जाते हैं। कितना भी सयाना क्यों न हो, काजलकी कोठरीमें जाते ही एक-न-एक लीक तो लग ही जायगी। कोई विरला ही इस काजलकी कोठरीसे बेदाग निकल पाता है। कोई कहीं अटक जाता है, कोई कहीं। कंचनकी परिधि तोड़ो तो कामिनीका जाल बिछा हुआ है, इस जालको भी काटो तो कीर्तिकी विषवल्लरी अपनी छायामें बुलाने लगती है। ससुरालमें आनेके बाद लीलावतीपर यह दुनियाका नशा इस प्रकार छा गया कि वह पहलेके संस्कारोंको एक प्रकार सर्वथा भुला बैठी। पतिदेव राजपुरोहित थे। घरमें लक्ष्मीका विलास था। किसी बातकी कमी थी नहीं। दास-दासियाँ सेवा-शुश्रूषाके लिये थीं। लीलावती भोगके इन प्रलोभनोंके सामने झुक गयी, झुक ही गयी! बड़ा कठिन है इन प्रलोभनोंको जीतना। पाँच-सात वर्षके भीतर दो संतानें भी हो गयीं—गोपालकृष्ण और कालिन्दी। बस, पतिके भोग-विलासका साधन जुटाना और बच्चोंको सुखमें भुलाये रखना—इसके सिवा लीलावतीके लिये अब कोई कार्य नहीं रह गया। देरतक सोती रहती, घरका सारा काम-धंधा दास-दासियोंपर छोड़े रहती। पतिदेव भी उसके इशारेपर नाचनेवाले जीव थे। वह जो कहती, वे वही करते। जो भौंरा सूखे काठको स्वयं कुरेद डालता है, वही कोमल-

कमलके बीचमें आकर प्रीतिकी रीतिमें लग जाता है, केसरको जरा भी धक्का नहीं लगने देता।

इन्द्रियोंका नियमन नहीं, मुखमें नाम नहीं—ऐसा जीवन तो भोजनके साथ मक्खी निगल जाना है। ऐसे भोजनसे भला, कहीं सुख मिल सकता है? और बड़ी विचित्र बात तो यह है कि जगत्के भोग-विलासमें डूबे हुए लोग भी अपनेको सुखी नहीं मानते; उनके भीतर अभावकी भट्ठी सदा जला करती है 'यह है तो वह नहीं' बना ही रहता है। आज कुछ, कल कुछ। कारण, यह जीव-जगत्के विलासोंसे तृप्त हो नहीं सकता, हो ही नहीं सकता। भीतरका हंस परमहंस बननेके लिये व्याकुल है; वह जगत्के गंदे पदार्थोंमें रम नहीं सकता, बँध नहीं सकता। इसीलिये तो हम जीवनके प्रत्येक पगपर जगत्के भोग-विलासोंमें डूबे हुए भी अपनेको दुःखी और अभावग्रस्त पाते हैं। हमारा अभाव, हमारा एकाकीपन प्रभुको पाये बिना मिट नहीं सकता। उसी साजनके लिये अन्तरका सारा कोलाहल है, एक उसीके लिये हृदयमें कलक है। परंतु इस बातको मनुष्य तबतक नहीं समझता, जबतक वह अच्छी तरह ठोकरें नहीं खा लेता। लीलावती दुनियाके राग-रंगमें बेसुध बही जा रही थी, बिलकुल बेसुध। एकाएक एक दिन उसकी कालिन्दीको हैजा हुआ। गोपालकृष्ण भी हैजेकी पकड़में आ गया। दोनोंके ही प्राण अब-तब थे। लीलावती निरुपाय रो रही थी। कोई भी दवा-दर्पण काम नहीं दे रहा था। आधी रात हुई। लीलावती अपने बच्चोंकी खाटके पास बैठी हुई आँसू बहा रही है। एक-एक क्षण गिन रही है। मनुष्य दुःखोंसे घिरकर जब चारों ओरसे असहाय हो जाता है तो स्वभावतः ही उसे भगवान्‌की

याद आती है। बड़े-बड़े नास्तिक भी ऐसे समय 'हे प्रभो! हे भगवन्!' पुकार उठते हैं। आज लीलावती भी दु:खोंसे घिरकर तथा चारों ओरसे निरुपाय हो प्रभुको कातर स्वरमें पुकार रही है, रोती जा रही है और प्रभुको पुकारती जा रही है। 'हाय! सुखोंमें मैं तुम्हें भुला बैठी थी। आज दु:खोंने चारों ओरसे जब घेर लिया है तो तुम्हारी ही यादका एकमात्र सहारा रह गया है। हे प्रभो! मेरे इन बच्चोंको बचा लो।' लीलावतीकी प्रार्थना विफल नहीं गयी। प्रार्थनामें एक अद्भुत दिव्य शक्ति है। सच्ची प्रार्थनामें प्रभुका स्पर्श मिलता ही है।

भगवान् भक्तको गृह-प्रपंच करने ही नहीं देते। सब झंझटोंसे अलग रखते हैं। यदि उसे वैभवशाली बनावें तो गर्व उसे धर दबायेगा। गुणवती स्त्री यदि उसे दें तो उसीमें उसकी आशा लगी रहेगी। इसलिये कर्कशा उसके पीछे लगा देते हैं और उनका विरद ही यह है कि जिसे एक बार भी अपना लेते हैं, जिसकी बाँह पकड़ लेते हैं, उसे एक क्षणके लिये भी छोड़ते नहीं। वे ऊँच-नीच नहीं देखा करते। भक्ति जहाँ देखते हैं, वहीं ठहर जाते हैं। दासीपुत्र विदुरके यहाँ उन्होंने केलेके छिलके खाये, दैत्यके यहाँ प्रकट होकर प्रह्लादकी रक्षा की, रैदासके साथ वे चमड़ा रँगा करते थे और कबीरसे छिपकर उनके वस्त्र बुन दिया करते थे। धर्माके घर पानी भरते थे और नरहरि सोनारके साथ सुनारी करते थे। जनाके साथ गोबर बटोरते थे और नाभाके साथ नि:संकोच होकर भोजन करते थे। एकनाथके घर श्रीखंडमा बनकर चौका-बर्तन करते थे और ज्ञानदेवकी भीत खींचते थे। ईश्वर अपने भक्तसे बार-बार यही कहता है कि 'तू दुनियासे विमुख होकर मेरी ओर आ। बिना

मेरी ओर आये तुझे सच्ची शान्ति और सुख नहीं मिलेगा, कबतक तू मुझसे भागता फिरेगा, कबतक मुझसे विमुख रहेगा?' और जिस क्षण भक्त प्रभुका सर्वभावसे आश्रय ले लेता है, उसी क्षण परमेश्वर उसकी रक्षा—योगक्षेमका सारा भार अपने ऊपर ले लेते हैं।

लीलावतीको अपने गत जीवनपर घोर अनुताप हुआ। इतने दिन विस्मरणमें बीते—'यह सोच-सोचकर वह धाड़ मारकर रोती और छाती पीटती। सच्चा अनुताप ही जीवनको निर्मल बनानेका एकमात्र अमोघ साधन है। इस अनुतापसे बढ़कर हृदयके लिये क्या सहारा है।' जगत्‌के प्रलोभन और आकर्षणकी मदिरा पीकर मदमत्त जीव जब बेसुध हो जाता है तो दुःखोंकी प्यारभरी मारसे प्रभु उसे होशमें लाते हैं और अनुतापके तीर्थमें नहला देते हैं। अनुताप करते हुए जीव कहता है, 'मैं तो अनाथ हूँ, अपराधी हूँ, कर्महीन हूँ, मन्दमति और जड़बुद्धि हूँ। हे कृपानिधे! हे मेरे माता-पिता! अपनी वाणीसे मैंने तुम्हें कभी याद नहीं किया। तुम्हारा गुणगान भी न सुना, न गाया। अपना हित छोड़ विषय-व्यामोहमें मारा-मारा फिरा। संतोंका संग मुझे कभी अच्छा नहीं लगा। दूसरोंको पीड़ा पहुँचानेमें कभी दया नहीं आयी। केवल इस पिण्डके पालनमें रात-दिन एक किये रहा। कुछ समझ नहीं पड़ता क्या बोलूँ, क्या याद करूँ। मैंने अपना आप ही सत्यानाश किया, मैं अपना आप ही बदला लेनेवाला बैरी बना। हे भगवन्! तुम दयाके निधान हो, मुझे इस भवसागरके पार उतारो।' इस अनुताप-के तीर्थ-सलिलमें स्नान कर चुकनेपर जीवका सारा नशा उतर जाता है और उसकी सारी चिन्ता प्रभुके चरणोंमें निवेदित हो जाती है।

आजका प्रभात लीलावतीके लिये वस्तुतः जीवन-प्रभात था। उसने सवेरे-ही-सवेरे देखा, एक अलमस्त फकीर अपने तंबूरेपर गाता हुआ निकला जा रहा है—

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु, भाई रे!
नाहिं तो भव बेगारीमें परबे, छूटत अति कठिनाई रे॥

सचमुच यह '**भव बेगारी**' बड़ी बुरी बला है। संसार जब बेगारीमें पकड़ लेता है तो जल्दी छोड़ता नहीं, प्राण ले लेता है, आखिरी साँसतक बेगार लिये जाता है। रीछनीकी तरह गुदगुदाकर प्राण ले लेता है। इससे पिण्ड छुड़ानेका बस, एकमात्र साधन है राम-नाम—

श्रीराम जय राम जय जय राम।
श्रीराम जय राम जय जय राम॥

लीलावतीकी आँखें अब खुल चुकी थीं, अन्तरकी आँखें। बाहरका सारा खेल बाहरकी आँखें देखती हैं और भीतरकी लीला भीतरकी आँखें। जिसे भीतरकी ओर देखनेका चसका लग जाता है, वह बाहरके इन बनते-मिटते चित्रोंसे आँखें फेर लेता है और सच्चा देखना तो वही है। लीलावतीके पुराने संस्कार जाग्रत् हो आये—पिताका श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ और माताकी नारायण-नारायणकी नाम-धुन—सब एक-एक कर जाग उठे—ठीक जैसे मेघोंका आवरण हटाकर सूर्य झाँकने लगता है। अन्तस्तलमें जब सूर्यनारायणका उदय हो जाता है, फिर जन्म-जन्मान्तरोंका संचित अन्धकार सदाके लिये भाग जाता है। लीलावतीने भगवान् श्रीबालकृष्णकी एक स्वर्ण-प्रतिमा बनवाकर प्राण-प्रतिष्ठा करायी। प्रातःकाल बहुत तड़के वह स्नानादिसे निश्चिन्त हो भगवान्‌को स्नान कराती और फिर षोडशोपचारसे पूजन करती। पतिकी सेवामें, बच्चोंके लालन-

पालनमें कहीं कोई शिथिलता नहीं आयी। हाँ, इन सबकी गति प्रभुके चरणोंकी ओर मुड़ गयी। अब वह भोजन बनाती तो इस उत्साहसे कि प्रभुको भोग लगाना है। वह सारा कार्य पहलेसे अधिक मनोयोग और उल्लाससे करती; हाँ, उन समस्त कर्मोंका केन्द्र अब स्वयं श्रीभगवान् थे; जगत् नहीं था। यही तो करना पड़ता है। कर्म तो करने ही पड़ते हैं, कर्मोंसे मुक्ति कहाँ है। हो ही कैसे सकती है। जगत्के विषय-प्रपंचमें उलझे जीव जगत्के केन्द्रमें कोल्हूके बैलकी तरह चक्कर लगाते ही रह जाते हैं, परंतु भव-बन्धनसे विमुक्त जीव इन समस्त कर्मोंको तथा उनके फल, परिणामको प्रभु श्रीहरिके चरणोंमें निवेदित कर उनके आशीर्वाद-प्रसादका आनन्द लाभ करते हैं। विषयी और मुक्तमें यही अन्तर है।

लीलावती अपना सम्पूर्ण कार्य करती, बड़े ही उल्लास-से करती पतिकी सेवा, बच्चोंकी सँभाल—कहीं किसी बातमें उससे अब चूक नहीं होती और यह सब कुछ होता श्रीहरिके प्रीत्यर्थ। पहलेकी अपेक्षा एक ही बातमें अब अन्तर हो गया था। वह था भगवान्के नामस्मरणका चसका। श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ किया ही करती थी; पर इससे भी अधिक उसने यह किया कि अखण्ड नाम-स्मरणका चसका लगा लिया। यही उसका साधन-सर्वस्व था। नाम-स्मरणका चसका लगना है बड़ा ही कठिन; पर एक बार जहाँ यह चसका लगा वहाँ फिर एक पल भी नामसे खाली नहीं जाता। नाम-स्मरण यह है कि चित्तमें रूपका ध्यान हो और मुखमें नामका जप हो। अन्त:करणमें ध्यान जमता जाय, ध्यानमें चित्त रँगता जाय, चित्तकी तन्मयता हो जाय। यही वाणीमें नामके बैठ जानेका लक्षण है। चित्तमें ध्यान न हो तो न सही, पर वाणीमें तो

हो—यह नाम-स्मरणकी पहली सीढ़ी है। फिर वाणीको नामका चसका स्वयं लग जाता है। नामका रस एक बार जब अच्छी तरह मिल जाता है तो फिर छुड़ाये भी नहीं छूटता। यही नामका स्वारस्य है।

लीलावतीकी स्थिति धीरे-धीरे प्रगाढ़ होती गयी। वाणीमें नाम और चित्तमें रूप अच्छी तरह उतर आया था। उसके हृदयके आँगनमें वही श्रीबालकृष्ण अहर्निश किलकता रहता था। कभी चाँद-खिलौनाके लिये अड़ता था तो कभी स्तनपानके लिये। माँ भीतर-ही-भीतर कभी उसकी चुम्बियाँ लेती, कभी उसकी उलझी लटें सुलझाती और चोटी गूँथती। अंदर-ही-अंदर उसकी सेवा-परिचर्यामें, उसीके लाड़-प्यारमें लगी रहती—इतना अधिक कि बाहरके कार्यभार धीरे-धीरे शिथिल होते गये। लड़के-लड़कियाँ सयानी हो चुकी थीं। जगत्के समस्त दायित्वसे वह मुक्त हो चुकी थी। पतिदेव भी उसकी इस प्रगाढ़ भक्तिसे अपनेको कृतकृत्य मानते थे। लीलाकी उत्कट साधनाके कारण समस्त परिवारमें, समस्त वातावरणमें भगवद्भक्तिकी सुगन्ध भर रही थी।

देवोत्थान एकादशीकी रात थी। घरमें प्रभु श्रीबालकृष्णकी झाँकी सजायी गयी थी। आधी राततक सबने जागरण किया, फिर चरणामृत बँटा। लीलावतीके हृदयमें आज कुछ अजीब तरहकी लहरें उठ रही थीं। उसने कन्हैयाको हृदयमें जकड़ रखा था और यह ठान लिया था कि आज उसे अपना स्तनपान कराऊँगी ही। धीरे-धीरे वह क्या देखती है कि बालकृष्णकी सुवर्णप्रतिमा, जो आज अनुपम ढंगसे सजायी गयी है, किलकारियाँ छोड़ने लगी है। लीलावतीके स्तनोंमें दूध उमड़ आया है वात्सल्य-प्यारके उभारमें। दूध उमड़ा और उसके

वक्षःस्थलको भिगोने लगा। फिर क्या देखती है कि वह यशोदाका लाल माँ लीलावतीका स्तनपान करनेके लिये आगे बढ़ता है। वह बरबस दौड़कर उसे छातीसे चिपटा लेती है और स्तनपान कराती है। मातृस्तनमें मुँह लगाते ही माताकी छातीमें दूध भर आता है। माँ-बच्चे दोनों ही लाड़ लड़ाते हुए एक-दूसरेकी इच्छा पूरी करते हैं।

दूसरे दिन प्रातःकाल पूजाघरका द्वार जब खोला गया तो देखा गया कि लीलावती भगवान् श्रीबालकृष्णकी मूर्तिको गोदमें चिपटाये बेहोश पड़ी है—सदाके लिये बेहोश। वह बेहोशी जो होशकी चरम सीमा है और जिसे पाकर फिर इस दुनियाकी होश और होशियारीसे सदाके लिये पल्ला छूट जाता है, उसी बेहोशीमें लीलाने सदाके लिये गोता लगा लिया।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

बहिन सरस्वती

सरस्वती माता-पिताकी बड़ी ही लाड़ली लड़की थी। इसीसे उसके लालन-पालनमें माता-पिताने कुछ भी उठा नहीं रखा था। उसको कहीं जरा-सी भी मनोवेदना हो, यह माता-पिताको असह्य था। इकलौती संतान थी, सम्पन्न घर था और माता-पिताके हृदयोंमें स्नेहकी सरिता उमड़ती थी। बारह वर्षकी अवस्थामें उसका विवाह एक सम्पन्न घरके सुदर्शन नामक लड़केसे कर दिया गया। तीन साल बाद द्विरागमन हुआ। सरस्वतीके विवाह और द्विरागमनमें बहुत बड़ी धनराशि खर्च की गयी। प्रचुर दहेज दिया गया।

सरस्वती सचमुच योगभ्रष्टा थी। नैहरके पंद्रह वर्षमें उसके शरीर और मनको चोट पहुँचानेवाली कोई भी छोटी-सी घटना भी नहीं हुई। वह सब प्रकारसे बड़े आरामसे रही, पर उसका मन कभी संसारके भोगोंमें फँसा नहीं। आरामकी सामग्रियाँ प्रचुर मात्रामें थीं, पर उसका मन उनसे सदा उदासीन-सा रहता था। माता-पिताको दुःख न हो इसलिये वह प्रकटमें सब कुछ स्वीकार करती थी, उसका मन उसको स्वीकार नहीं करता था। घरमें श्रीगोपालजीका मन्दिर था। श्रुतदेव नामक बूढ़े पुजारी बड़े ही भक्तिभावसे श्रीगोपालजीकी पूजा करते थे। उनके कोई संतान नहीं थी। उनका गोपालजीमें वात्सल्यभाव था। वे बड़े स्नेहसे गोपालजीको भोग लगाया करते। उनके मन गोपालजी जड-स्वर्णप्रतिमा नहीं थे। सच्चिदानन्दघन भगवान् थे। मनमें ही नहीं भक्त श्रुतदेवकी शुद्ध भावनाके अनुसार भगवान् उनसे स्थूल व्यवहार भी ऐसा ही करते थे। पर इस बातका रहस्य

श्रुतदेवने किसको नहीं बताया। सरस्वतीके माता-पिता श्रीकीर्ति तथा मतिमान् भी इस रहस्यसे अपरिचित थे। सरस्वती छोटी उम्रसे ही मन्दिरमें जाकर बैठती, खेलती, पुजारीजीकी पूजा-आरती तथा भोग-रागको बड़े चावसे देखा करती। पुजारीजी छोटी बच्ची समझकर उससे कोई छिपाव नहीं करते। इसके अतिरिक्त उनका सरस्वतीके प्रति बड़ा स्नेह था। वे उसे अपनी सगी पुत्रीसे बढ़कर मानते थे। यह पुत्री और ठाकुरजी श्रीगोपालजी प्राणप्रियतम पुत्र—इस भावसे पुजारीजीका स्नेह दोनोंमें बँट गया था। उनके इस सम्बन्धसे सरस्वती और गोपालजीमें भी भाई-बहनका सम्बन्ध हो गया था। छोटी बालिका अपने गोपाल भैयासे बड़ा प्यार करती। बाल्यभावसे उन्हें खिलाती-पिलाती, उनके साथ खेलती, शुद्ध प्रेमालाप करती। श्रुतदेवजी बड़े प्रसन्न होते।

सरस्वतीकी बुद्धि बहुत तीव्र थी। वह पुजारीजीसे गीता-रामायण-पुराण तथा अन्य शास्त्रग्रन्थ बड़ी लगनसे पढ़ती और समय-समयपर श्रीभगवान्‌के स्वरूप तथा लीलाके सम्बन्धमें पूछा करती। श्रुतदेवजीको वह पितासे बढ़कर मानती और उनके उपदेशों एवं वचनोंको कार्यरूपमें परिणत करनेकी चेष्टा करती। इससे उसका जीवन पवित्र भक्तिमय हो गया था। नौ ही वर्षकी अवस्थामें उसे श्रीभगवान्‌के दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हो गया था। उसके सरल आग्रहसे प्रसन्न होकर साक्षात् प्रकट हो भगवान्‌ने भोग आरोग लिया तथा कुछ ही दिनों बाद श्रावणीपूर्णिमाके दिन उसके द्वारा रक्षाबन्धन करवाया। श्रुतदेव-जी इससे बड़े ही प्रसन्न हुए। इसके बाद तो श्रीगोपालजीके साथ सरस्वतीका भाई-बहिनका सम्बन्ध इतना स्पष्ट और सुदृढ़

हो गया था कि दोनों जाने कितनी बार मिले और कितनी बार परस्पर सुख-दुःखकी चर्चा हुई। फिर गोपाल भैयाकी सम्मतिसे ही सरस्वतीने विवाह करना स्वीकार किया, इस शर्तपर कि गोपाल भैयाको सरस्वती बहिन जब याद करेगी तभी वे उसके पास पहुँच जायँगे। सरस्वतीको अपने बाल्यजीवनमें पिता-माताके द्वारा जो सब प्रकार सुख-सुविधा प्राप्त हुई, इसमें गोपाल भैयाकी ही करामात थी और सरस्वतीके विवाह तथा द्विरागमनमें भी गोपाल भैयाका बड़ा हाथ था। दहेजकी सामग्री, अतिथियोंका स्वागत-सत्कार, सबकी सात्त्विक प्रसन्नता आदिकी व्यवस्था सरस्वतीके पिता मतिमान्‌को आश्चर्यमें डालनेवाली थी। कहाँसे कैसे कब क्या होता था इसका उन्हें पता ही नहीं लग पाता था। न मालूम कहाँसे उनके इतने कार्यकुशल मित्र आ गये थे और इतनी सुमुखी सयानी देवियाँ घरमें आ गयी थीं श्रीकीर्तिके काममें सहयोग देने। उन्हें पता नहीं था कि यह सरस्वतीके भैया गोपालकी कृपाशक्तिके खेल हैं।

द्विरागमन हो गया। सरस्वती ससुराल चली गयी। गोपाल भैया गुप्तरूपसे बहिनको पहुँचाने साथ गये और दो-तीन दिन वहीं रहकर उसे सान्त्वना देकर लौटे। सरस्वतीके पति सुदर्शन बड़े ही सात्त्विक प्रकृतिके साधु पुरुष थे। उनमें जगत्‌के छलछद्मका कहीं गन्ध-लेश भी नहीं था। पिताका घर सम्पन्न था। माता-पिता निष्ठावान् धार्मिक थे। घरमें सब प्रकारसे सुख था। सरस्वतीका जीवन बहुत आनन्दसे बीत रहा था। गोपाल भैया बीच-बीचमें आकर बहिनसे मिल जाया करते और बातों-ही-बातोंमें उसे उपदेश दिया करते तथा अपने स्वरूपका तत्त्व समझाया करते थे।

एक दिन सरस्वतीने श्रीगोपालजीसे कहा—"भैया! मैं छोटी थी; तब तो कुछ समझती नहीं थी। तुम्हारी छोटी-सी मूर्ति मुझे बड़ी प्यारी लगती। पुजारीजी पूजा करते तब मुझे ऐसा लगता, तुम मानो हँस रहे हो; वे भोग लगाते तब मुझे लगता, तुम खा रहे हो। मेरी बालसुलभ श्रद्धा थी। फिर एक दिन जब मैं पुजारीजीसे अड़ गयी कि आज तो मैं ही भोग लगाऊँगी, तब उन्होंने बहुत समझाया, पर मैंने अपना हठ नहीं छोड़ा; उस समय मुझको लगा—तुम मानो पुजारीजीसे कह रहे हो कि 'सरस्वती भोग लगाना चाहती है तो तुम क्यों रोकते हो?' मुझे इसके हाथका भोग ग्रहण करनेमें बड़ी प्रसन्नता है।' पता नहीं, उन्होंने तुम्हारी बात सुनी या नहीं; परंतु तुरंत ही मुझसे कह दिया कि 'तुम भोग लगाओ' और पता नहीं इतना कहकर वे क्यों बाहर चले गये। मैंने भोग रखा, पर्दा लगाया, पर तुमने खाया नहीं। भैया! मुझे उस दिनकी बात अच्छी तरह याद है, जब मैं रोने लगी तो तुम उसी मूर्तिमेंसे प्रकट हो गये और मेरा रखा हुआ प्रसाद प्रसन्नतासे पाने लगे। मुझे उस दिन बड़ी ही प्रसन्नता हुई। इसके छः ही महीने बाद मेरे आग्रह करनेपर तुमने राखी बँधवायी मुझसे। इसके बाद तो तुम मुझसे बातचीत करने लगे। मैं जानती नहीं थी कि तुम कौन हो! इतना ही जानती थी कि मेरे भैया लगते हो। यही पुजारीजीने मुझको बताया था। माँने कई बार मुझसे पूछा, पिताजीने भी कभी-कभी बात चलायी, पर तुमने मना कर दिया था, इससे मैंने किसीसे कुछ भी नहीं कहा। तुम्हारे कहनेसे मैं यहाँ चली आयी, पर अब मेरे मनमें यह जाननेकी आ रही है कि वास्तवमें तुम कौन हो! माताजी,

पिताजी तुम्हें भगवान् कहते हैं। पुजारीजी भी भगवान् ही मानते हैं। पर तुम मेरे माता-पिताके सामने मूर्ति ही बने रहते हो भैया! बताओ, क्या सचमुच तुम भगवान् ही हो! भगवान् ही हो तो मेरे भाई कैसे? क्या मैं तुमको भाई न मानूँ! ऐसा तो सोचते ही मेरा मन जाने कैसा घबरा जाता है। भैया! अपना भेद मुझे बताओ। आज मैं बिना जाने नहीं रहूँगी।''

सरस्वती बहिनकी बात सुनकर गोपाल भैया हँसे। बोले—'सरस्वती बहिन! सचमुच मैं तुम्हारा भैया हूँ। यों तो मैं सारे ही संसारका बन्धु हूँ, पर तुम्हारा तो भाई ही हूँ। तुम्हारा मेरे प्रति जो निश्छल प्रेम है, उससे तुमने मुझको सदाके लिये अपना भैया बना लिया है। बहिन! प्रेम आत्माका स्वरूपभूत गुण है—धर्म है। जैसे दूधकी सफेदी और अग्निकी दाहिका शक्तिका उनसे अभिन्न सम्बन्ध है, वैसे ही आत्माका अभिन्न सम्बन्ध प्रेमसे है। परंतु बद्ध जीवका चित्त अशुद्ध होनेसे उसके प्रेमका विषय दूसरा होता है। वह अपने स्वरूप आत्मामें प्रेम न करके तुच्छ और अनित्य भोगपदार्थोंमें—स्त्री, पति, पुत्र, धन, मान, प्रतिष्ठा आदिमें प्रेम करता है और इन नश्वर पदार्थोंसे प्रेम करनेके कारण ही बार-बार प्रवंचित होता है। उसे इस प्रेमके परिणाममें निराशा, असफलता, वियोग, मृत्यु, नाश और रोना-कराहना ही मिलता है; पर जब मेरी कृपासे जीवका चित्त शुभ होनेपर अपने स्वरूपकी ओर दृष्टि जाती है, तब उसमें विशुद्ध प्रेमकी स्फूर्ति होती है। तब वह आत्माकी ओर मुड़ता है, आत्मामें प्रेम-स्थापन करता है। आत्माराम हो जाता है। तदनन्तर ही प्रेम-साधनाके बलसे वह जान पाता है कि मैं (भगवान्) ही समस्त आत्माओंका आत्मा हूँ। मैं ही सबका

एकमात्र स्वरूपाश्रय हूँ, तब वह समझता है कि बस, एकमात्र भगवान् ही मेरे प्रेमास्पद हैं। ऐसी अवस्थामें उसका चित्त मेरे ही दिव्य गुणोंकी ओर आकर्षित हो जाता है, मेरे ही दिव्य सौन्दर्य-माधुर्यपर मुग्ध होता है और फिर वह समस्त जगत्में और जगत्से बाहर केवल मुझको ही देखता हुआ मुझमें ही अपने प्रेमको मिला देता है। तब मैं क्या हूँ, कैसा हूँ, इस तत्त्वका उसे मेरी कृपासे यथार्थ पता लग जाता है।

'सरस्वती बहिन! तुम मुझे ठीक जानती नहीं कि मैं कौन हूँ; परंतु मुझसे प्रेम करती हो। मेरी तुलनामें तुम्हारे मनमें न घर-द्वार है, न माता-पिता हैं, न धन-ऐश्वर्य है, न मान-सम्मान है और न स्वर्ग-मोक्ष ही है। तुम्हारा मुझमें इतना अपार अनुराग है। सो यह उचित ही है। इस बातको चाहे कोई जाने या न जाने, सबका प्रेम आत्मामें होता है और मैं तो आत्माका भी आत्मा हूँ। इसके सिवा जो मुझे एक बार देख लेता है, वह अनन्य प्रेम किये बिना रह ही नहीं सकता। मैं हूँ ही ऐसी वस्तु! आत्माराम मुनि भी मेरे गुणोंपर मुग्ध होकर मेरे प्रति अहैतुकी भक्ति करते हैं। यह प्रेम कोई वृत्ति नहीं है, यह मेरी स्वरूप-शक्ति है। प्रेमवृत्ति तो इसीका एक साधारण क्षुद्र प्रकाशमात्र है। भाईके पवित्र भावसे तुममें मेरे प्रति यह जो अप्रतिम प्रेम है, यह मेरे यथार्थ स्वरूपका ज्ञान तुमको अपने-आप ही करा देगा।

'वस्तुतः मेरे स्वरूपका पता कोई भी पुरुषार्थके द्वारा नहीं प्राप्त कर सकता। मेरा स्वरूप मन-बुद्धि-वाणीके अगोचर है। मैं ही नित्य सत्य हूँ, सनातन हूँ, पूर्ण हूँ और परात्पर हूँ। जो कुछ भी दृश्यवर्ग है, सब न तो मुझसे भिन्नरूपसे सत्

है और न यह शशशृंग या इन्द्रजालकी भाँति सर्वथा असत् ही है। यह जो कुछ है, सब मैं ही हूँ, पर जिस रूपमें यह दीखता है, उस रूपमें नहीं। इस दृश्यमें परिवर्तन होता है। परंतु प्रत्येक दृश्यकी आड़में मैं नित्य सत्यरूपसे विराजित हूँ। यह परिवर्तन तो मेरा लीला-विलास है। प्रलयमें जगत् मुझमें ही लीन होता है और सृष्टिके आरम्भमें फिर मुझसे ही उद्भूत हो जाता है। अनन्त विश्व-ब्रह्माण्ड सब मुझमें है, मैं अनन्त विश्व-ब्रह्माण्डोंमें हूँ और मैं ही उनसे अतीत अचिन्त्य रूप हूँ। जो कुछ भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष है, जो कुछ जगत् या जगदतीत है, जो कुछ भी 'है' या 'नहीं' है सब मैं ही हूँ। मैं सदा अप्रकट हूँ और नित्य प्रकट हूँ। परमाणु-परमाणुमें मेरा ही नित्य आनन्दनृत्य चल रहा है। सुन्दर सृजन और भयानक संहार सब मेरे ही लीलास्वरूप हैं। इतना सब होते हुए भी मैं तुम्हारा अपना और परम प्यारा गोपाल भैया हूँ। तुम मुझे नित्य भैया मानो और मैं तुम्हें नित्य बहिन मानूँगा।

'देखो, तुम्हारा यह पति मेरा पुराना भक्त है। यह पहले अवन्तिकापुरीमें ब्राह्मण था। वहाँ भी तुम इसकी धर्मपत्नी थी और मेरी परम भक्त थी। मेरे किसी लीलासंकेतसे तुम दोनोंको फिर यहाँ जन्म लेना पड़ा। अब तुम दोनों मेरी भक्ति करते हुए सफल-जीवन भोगोगे और मेरे दुर्लभ परमधामको प्राप्त करोगे।'

'तुम निश्चय समझो कि एक बार जो मेरा हो जाता है, वह सदा मेरा ही रहता है। तुम्हारे सदृश महान् भाग्यशाली भक्तोंको जो मेरे लिये सारे भोगोंकी आसक्ति भूलकर सब कुछ त्यागकर मेरे ही हो गये हैं, मैं कभी नहीं छोड़ता'—

विस्मृत्य सकलान् भोगान् मदर्थे त्यक्तजीवितान्।
मदात्मकान् महाभागान् कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥

इतना कहकर गोपाल भैयाने सरस्वतीके सिरपर हाथ रखा। हाथ रखते ही उसकी बुद्धिमें भगवान्‌का तत्त्वस्वरूप प्रकट हो गया। कुछ ही क्षणोंमें बुद्धि भी असमर्थ हो चली। अब आगेकी बात कौन बताये। भगवान्‌के साथ सरस्वतीकी किस प्रकार कैसी एकात्मता हुई, इसका किसीको पता नहीं है; परंतु वह समाधिस्थ-सी हो गयी। श्रीभगवान्‌का वरद हस्त उसके मस्तकपर है और वह जड़ पुत्तलिकाकी भाँति निस्तब्ध—स्थिर है। वह इस समय कहाँ थी, क्या अनुभव करती थी, अनुभव करनेवाली कोई सत्ता भी थी या नहीं, कुछ पता नहीं। पर जब कुछ देरके बाद वह जगी तब देखा गया, उसमें अपूर्व विलक्षणता थी। उसकी मुखाकृति ही बदल गयी थी। उससे मानो स्निग्ध शीतल तेजोराशि तथा निर्मल शान्तिकी धारा प्रवाहित हो रही थी। भगवान् उसकी ओर देखकर मुसकरा दिये और वह भी हँसने लगी। तदनन्तर भगवान् अन्तर्धान हो गये। सरस्वती भगवान्‌से प्रत्यक्ष दर्शन और उपदेश प्राप्त करके कृतार्थ हुई।

इधर भगवान्‌ने कृपापूर्वक सरस्वतीके पति सुदर्शनको भी कुछ ऐसी विचित्र प्रेरणा की कि उसे अपने पूर्वजन्मकी बात याद आ गयी और वह सबका मोह छोड़कर केवल भगवदाराधनामें लग गया। अब तो श्रीगोपालजी उसके सामने भी प्रकट हो गये। दोनों पति-पत्नी एक ही साध्य, एक ही साधन और एक ही मार्गका अवलम्बन करके भगवान्‌के परमप्रेमी बन गये। अब उसके पास जो कुछ भी था, सब

भगवान्‌की पूजाका उपकरण बन गया और वे जो कुछ भी करते, सब भगवत्परायण होकर भगवान्‌की पूजाके लिये ही करते। उनका अलग कोई काम रह ही नहीं गया। इस प्रकार भगवद्भक्तिसे ओत-प्रोत भगवन्मय जीवन बिताकर वे भगवान्‌के परमधामको प्राप्त हुए।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

प्रेमिणी हसीना और हमीदा

दूर अरब देशमें खस नामक एक सम्भ्रान्त कुटुम्ब था। उसका सरदार व्यापारचतुर और सर्वनिधिसम्पन्न पुरुष था। उसके हसीना नामकी एक सुशीला, स्वभावत: मधुरभाषिणी कन्या थी। इसी हसीनाकी एक समवयस्का हमीदा नामकी सखी थी, जो उसके प्रत्येक रहस्यसे अवगत थी। प्रति सायंकाल ये दोनों समीपवर्ती रम्योद्यानमें जाकर पुष्प-चयन करतीं, मीठे-मीठे फल खातीं और बालसुलभ क्रीड़ा किया करती थीं; तत्पश्चात् गृहमें आकर अपने सुयोग्य पिताके मुखसे 'अमरिल कैस' नामक धर्मग्रन्थको प्रेमपूर्वक सुना करती थीं। इस प्रकार इन दोनोंके मनोंमें बाल्यकालसे ही ईश्वरानुराग उत्पन्न होने लगा था। एक समय संसार-भ्रमण करते हुए कोई हरिचरणानुरागी संत अरब देशमें जा पहुँचे, वहाँ भाग्यवश उनकी भेंट हसीनाके पितासे हुई। संतने उनका सत्कार स्वीकार किया और वहाँ सत्संग होने लगा। बात-ही-बातमें उन्होंने परम रमणीय व्रजधामकी महिमाके साथ ही वृन्दावनविहारीके परमोत्कृष्ट देवदुर्लभ रहस्यका वर्णन किया। हसीना भीतर बैठी हुई यह सब सुन रही थी। उसपर इस मधुर चर्चाका बड़ा प्रभाव पड़ा। महात्माने अन्यत्र प्रस्थान किया। इधर हसीनाके हृदयसागरमें प्रेम-तरंगें उठने लगीं, वह सौन्दर्य-माधुर्य-सुधा-रस-सागर सच्चिदानन्दघन श्रीनन्दनन्दनके सुन्दर दर्शनके लिये व्याकुल हो उठी। दिन-रात उन्हींका ध्यान, उन्हींका चिन्तन। पिताने उसकी यह दशा देखकर एक दिन अत्यन्त प्रेमसे पूछा कि 'बेटी! तुझे क्या हो गया है? न तुझे गरमीकी चिन्ता और न वर्षाका ज्ञान, न भूख और न प्यास। तेरा यह शरीर कितना

दुर्बल हो गया है। कोई प्रेतबाधा तो नहीं है? पिताके वचन सुनकर हसीनाने केवल इतना ही कहा कि 'जबसे वे रसिकशिरोमणि संत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मधुर गुणानुवाद गा गये हैं, तबसे उन्हीं (श्रीकृष्ण)-के दर्शनके लिये मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है। मुझे दिन-रात उन्हींका ध्यान है। मेरा एक-एक क्षण उनके दर्शनके बिना युगके समान बीत रहा है। अब तो जब उन श्यामसुन्दरके दर्शन होंगे, तभी मेरी आत्माको प्रसन्नता होगी। अतएव पिताजी! आप इस शरीरको भारतवर्षान्तर्गत दिव्य श्रीवृन्दावनधाममें शीघ्र पहुँचा दीजिये, अन्यथा मेरे प्राण अब शीघ्र ही प्रयाण करना चाहते हैं।

उस समय धर्मके नामपर कोई दुराग्रह नहीं था। हसीनाके पिताने अपनी पुत्रीकी अभिलाषाका अभिनन्दन किया और कहा कि 'अच्छा संग मिलते ही हम तुम्हें वहाँ भेज देंगे।'

भाग्यवश उन्हीं दिनों एक काफिला (व्यापारी यात्रियोंका समूह) बगदादको जा रहा था। हसीनाके पिताने सोचा—यह अच्छा अवसर हाथ आया। हसीनाको उसके भाई अब्दुल्ला और सखी हमीदाके साथ भेजनेकी तैयारियाँ होने लगीं। दोनों कन्याएँ अपने-अपने पिताके चरण-स्पर्श कर और उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर अपने प्राणोंके प्राण श्रीकृष्णके दर्शनार्थ अत्यन्त हर्षपूर्वक उस काफिलेके साथ चलीं। वहीं रास्तेमें—एक नदीतटपर उन लोगोंने डेरा डाला। दिन सुन्दर शरद्-ऋतुके थे, परमाह्लादिनी चन्द्रज्योत्स्ना खिल रही थी, अनेक प्रकारके वन्य कुसुमोंके सौरभसे मन प्रसन्न हो रहा था, जहाँ देखिये, वहीं आनन्दमय दृश्य दिखलायी देता था। उस समय ये दोनों सखियाँ उस तरंगिणीके तटपर एकान्त स्थानमें प्राकृतिक छटा देखने चली गयीं। सुन्दर लता और मनोहर वृक्षोंको देखकर उन्हें व्रज-लताओंका स्मरण हो

आया। हसीनाने अपनी प्रिय सहेली हमीदासे कहा कि 'एक बार इस एकान्त स्थलमें जहाँ चारों ओर शान्तिका साम्राज्य है, कृपाकर उन संतके द्वारा सुनाया हुआ व्रजकी शोभाका मधुर वर्णन तो करो।' अहा हा! 'यही वह शरद् थी, जब प्रेमानुरागिणी महाभागा व्रजगोपिकाओंके संग मदनमोहन श्रीकृष्णने रासेश्वरी श्रीराधिकाको साथ लेकर महारास किया था। उस हमीदाने, जो भावुकताकी मूर्ति ही थी, श्रीकृष्णके अंग-अंगकी छवि और परम गुप्त गोलोककी अनन्त माधुरीका विशद वर्णन जिस समय किया, उस समय वे दोनों तन्मयताकी अवस्थाको प्राप्त होकर मानो स्वयं ही उस रासकी नटी हो गयीं। सम्पूर्ण दृश्य उनके नेत्रोंके सम्मुख नाचने लगा। वे देखती क्या हैं कि प्रेमामृतमहासिन्धुस्वरूप सौन्दर्य-माधुर्यनिधि भगवान् नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र रासेश्वरी ज्योतिर्मयी महाशक्ति श्रीराधिकाजीके साथ उसी सुन्दर माधुरीकुंजमें विराजमान हैं। नव-नील-नीरद वर्ण है, कटिमें सुन्दर काछनी काछे हैं, कानोंमें सुन्दर कुण्डल हैं, गलेमें दिव्य पुष्पोंकी, रत्नोंकी और गुंजाओंकी मालाएँ सुशोभित हैं। सिरपर मयूरपिच्छका मनोहर मुकुट है, घुँघराली काली अलकावली भ्रमरपंक्तियोंकी शोभाको परास्त कर रही है। अधर-पल्लवपर मुरली शोभा पा रही है। करोड़ों-करोड़ों कामदेवोंको लज्जित करनेवाली युगल-सरकारकी रूपमाधुरी है। श्रीराधिकाजी सर्वांग सुसज्जित हैं। नील वस्त्र धारण किये हुए हैं। परम भाग्यवती व्रजवनिताएँ उनकी सेवामें संलग्न उनके योगिदुर्लभ दर्शन कर आनन्दविह्वल हो रही हैं। दोनों सखियोंने प्राणप्रियतमका मानसदर्शन किया और तदाकारवृत्ति होकर उसीमें स्थित हो गयीं। उस समय उन्हें बहिर्जगत्का ध्यान ही नहीं रहा।

इधर ये दोनों परमहंसोचित ध्यानमें निमग्न थीं, उधर

काफिलेका समाचार पाकर एक बद्दुओंका दल अस्त्र-शस्त्र लिये उस काफिलेपर टूट पड़ा। दोनों पक्षोंमें बहुत देरतक युद्ध होता रहा; डाकुओंने व्यापारियोंका बहुत-सा भाग नष्ट कर दिया और उनका धन छीनकर इधर-उधर वे छिप रहे। केवल हसीनाका भाई और कुछ स्त्रियाँ ही शेष बचीं। इन लोगोंका क्रन्दन सुनते ही उन दोनोंकी समाधि भंग हुई। वे तुरंत ही उस स्थानपर पहुँचीं, जहाँकी पृथ्वी हत्याकाण्डसे रक्तरंजित हो रही थी। ये सोचने लगीं—हे भगवन्! इतनी ही देरमें यह क्या हो गया; हमलोगोंपर दैवकी यह कैसी अकृपा! परंतु ईश्वरकी लीला तो विचित्र होती है, इसीमें उनका हित निहित था। उन डाकुओंमें दो-चार वहीं पास ही खड़े थे, इन दोनों सुन्दरियोंको देखकर उनके मुँहमें पानी भर आया। वे परस्पर कहने लगे, अहा! सर्वोत्तम धन तो यही है। इन दोनोंको लेकर बगदादमें बेचेंगे, इनकी कीमत भी खूब मिलेगी।' उन्होंने इन दोनों अबलाओंको हठात् पकड़ लिया और हाजियोंका वेष बनाकर वे इधर-उधर चक्कर लगाने लगे। हसीनाने किसी युक्तिसे एक मालिनके द्वारा अपनी विपत्तिका समाचार उस देशके खलीफाको लिख भेजा। खलीफाने वह पत्र पाकर तत्काल उन छद्मवेषधारियोंको पकड़ मँगाया और उन दोनोंका उद्धार कर महलमें भेज दिया। बेगमने उनको देखकर अत्यन्त स्नेहसे उनके नेत्र और मुख चूमकर अपनी गोदमें बिठाकर पूछा—'बेटियो! तुमपर क्या आपत्ति आयी है? तुम्हारा कहाँ जानेका विचार था? यहाँ कैसे आ पहुँची? उन्होंने अपनी बीती हुई सारी घटना आद्योपान्त कह सुनायी। उस करुण-कथाको सुनकर बेगमका हृदय पसीज गया। बेगमने उन्हें घर लौट जानेको कहा। पर उन्होंने कहा कि 'हमारा मन तो

श्यामसुन्दरके लिये उन्मत्त हो गया है। इससे अधिक विपत्तियाँ आयेंगी तो उन्हें भी हम सह लेंगी, पर वृन्दावन जरूर जायँगी।' उनको अपने सिद्धान्तपर अटल देखकर सहृदया बेगमने उन दोनों कुमारियोंको युद्धविशारद सिपाहियोंकी रक्षामें व्रज-भूमिको पहुँचा दिया। वे दोनों वहाँ पहुँचकर किसी एक मन्दिरके द्वारपर आयीं। उन्होंने उस भूमिको प्रणाम किया। देहलीपर मस्तक रखा और भीतर चौकमें प्रवेश किया। इतनेमें किसी व्यक्तिने पुजारीको समाचार दिया। वह आकर देखता है कि दो यवन-कन्याएँ मन्दिरके प्रांगणमें आ गयी हैं, वह इनकी ओर कोपपूर्ण दृष्टिसे देखता हुआ बोला—'तुमलोग कौन हो? इस मन्दिरमें तुम्हारा क्या काम है? तुमलोगोंने सारा मन्दिर अपवित्र कर दिया। निकल जाओ बाहर!' वे बेचारी इस अग्निमूर्ति पुजारीको देखकर सहम गयीं! पुजारीसे उन्होंने बहुत कुछ अनुनय-विनय किया, परंतु जब पुजारीने नहीं माना, तब वे बेचारी दु:खी होकर लौट गयीं, परंतु उनका मन तो श्रीकृष्णकी रूपमाधुरीमें लगा था। कालिन्दीके कूलपर पहुँचकर एक कदम्ब-वृक्षकी छायामें बैठकर दोनों अपने प्यारे श्रीकृष्णका चिन्तन करने लगीं। दिन बीत गया। रात हो गयी, सब लोग अपने-अपने घरोंमें जाकर सो गये। आधी रातका समय हो गया। इतनेमें वे देखती हैं कि यमुनाजीमें एक सुन्दर नौका चली आ रही है, जिसमें श्रीराधिकासहित भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं। संगमें कुछ सखियाँ चमर-छत्र, मोर-छत्र आदि लिये अपनी-अपनी सेवामें मग्न हैं। नौका आकर किनारे लगी। उसमेंसे एक सखीकी दृष्टि इन दोनों कन्याओंपर पड़ी, उसने नीचे उतरकर हसीनासे पूछा—'अहो! तुमलोग अर्धनिशामें यहाँ बैठी हुई क्या कर रही हो? तुम कौन हो? यह तुम्हारे साथ

कौन है? किस देशसे आयी हो? तुम्हारा क्या मनोरथ है? हमीदाने विनम्र प्रणाम करके उस सखीसे कहा कि हम दोनों अशेष क्लेश सहन करती हुई अरब देशसे वृन्दावनका माहात्म्य सुनकर भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करने इस व्रजभूमिमें आयी हैं। मेरा नाम हमीदा है। यह मेरी स्वामिनी हसीना हैं। इनके पिता एक दिन अपने महलमें बैठे हुए थे, वहाँ भारतवर्षके कोई महात्मा घूमते हुए जा पहुँचे। उन्होंने अखिलब्रह्माण्डनायक, नटवर, त्रिभुवनसुन्दर नन्दनन्दनकी छविका वर्णन किया; उसे सुनते ही हमलोगोंकी दशा विचित्र हो गयी और किसी तरह हम यहाँतक पहुँच गयीं। अब यह तो बतलाइये कि वे दीनानाथ हमलोगोंको दर्शन देकर कब कृतार्थ करेंगे?' तत्काल ही उस सखीने उनकी सरलता और सत्य स्नेहपर मुग्ध होकर उनसे कहा कि 'ये जो मणिसंयुत स्वर्णरचित सिंहासनपर विराजमान हैं, यही श्यामसुन्दर हैं और इनकी बायीं ओर परम सुन्दरी महारानी श्रीराधिकाजी हैं। इन दोनोंके चारों ओर ये ललितादि सखियाँ अपने-अपने सेवा-कार्यमें संलग्न हैं। ये दीनदयालु हैं। पहले अपने भक्तोंकी परीक्षा कर लेते हैं, तब समय आनेपर तुरंत स्वयं ही सहायताके लिये दौड़ आते हैं। तुमलोगोंका सम्पूर्ण वृत्तान्त इन्हें ज्ञात है, इसलिये तुमपर प्रसन्न होकर ये तुम्हें दर्शन देनेके लिये ही पधारे हैं।' इतना कहकर वह सखी उन दोनोंको श्रीकृष्ण और राधिकाके चरणकमलोंके समीप ले गयी, दोनों चरणोंपर लोट गयीं। जीवनकी सुख-साध पूरी हुई, जीवन-जन्म सार्थक हो गया। फिर वे दोनों आवागमनसे रहित होकर निकुंजविहारीके नित्य विहारमें सम्मिलित हो गयीं।

भक्तिमती आण्डाल या रंगनायकी

श्रद्धा और विश्वासके साथ भगवान्‌को जो जैसे भजता है, भगवान् भी उसे उसी भावसे भजते हैं। जो सीता और राधाके प्राणाधार पति थे, जो कौसल्या और यशोदाके लाड़ले लाल थे, जो सुग्रीव और अर्जुनके सखा थे, जो रावण और शिशुपालके शत्रु थे; वे ही भगवान् इस कलिकालमें भी सूर, तुलसी, मीरा तथा नन्ददास आदि भक्तोंके सामने प्रत्यक्षरूपमें प्रकट हुए और उन्हें अपनी लीलाएँ दिखलायीं। भगवान् सर्वत्र सर्वदा विभु-व्यापक तो हैं ही, परंतु जहाँ प्रेम है, वहाँ वे भक्तके इच्छित स्वरूपमें साक्षात् प्रकट हो जाते हैं। ***'प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।'*** हमारा यह दृढ़ विश्वास है और हम डंकेकी चोटपर यह कह सकते हैं कि आज भी हम अनन्य प्रेम, अखण्ड विश्वास और अविचल श्रद्धाद्वारा परमात्माको प्रकट साक्षात् रूपमें देख सकते हैं। उनसे रूबरू दो-दो बातें कर सकते हैं और अपने जीवनको कृतकृत्य कर सकते हैं। आवश्यकता है दृढ़ विश्वास एवं अटल अनन्य प्रेमकी। अस्तु!

आज हम एक ऐसी ही परम भक्तिमती देवीका दिव्य चरित वर्णन कर रहे हैं, जिसने प्रभुको पतिके रूपमें भजा और जिसे हरिने पत्नीके रूपमें अंगीकार किया। प्राचीन कालमें दक्षिण-भारतमें कावेरीतटपर स्थित एक गाँवमें विष्णुचित्त नामक एक परम वैष्णव भक्त रहते थे। वे बड़े ही आस्तिक एवं धर्मनिष्ठ पुरुष थे। अहर्निश वे भगवद्भजन, हरिकीर्तन और नाम-जपमें निरत रहते थे। उन्हें भगवान्‌के सिवा और कुछ सुहाता ही न था। बड़ा ही सुरम्य उनका एक तुलसीका उपवन था। वे नित्य प्रातःकाल तुलसीके थालोंमें जल डालते और तुलसी-

दलकी ही माला बनाकर भगवान्‌का शृंगार करते। एक समय प्रातःकाल जब वे घड़ेमें जल भरकर तुलसी सींचने गये तो वहाँ उन्हें परम मनोहर नवजात कन्या दिखायी पड़ी। उन्होंने बड़े स्नेहसे उस बालिकाको उठा लिया तथा उसे वटपत्रशायी भगवान् नारायणके चरणोंमें रखकर कहा—प्रभो! यह तुम्हारी ही सम्पत्ति है, जो तुम्हारी सेवाके लिये आयी है। इसे अपने पादपद्मोंमें आश्रय दो।' इसपर मूर्तिमेंसे शब्द आया—'इस लड़कीका नाम 'कोदई' रखो और इसे अपनी ही लड़की मानकर इसका लालन-पालन करो।' 'कोदई' का अर्थ है—'फूलोंके हारके समान कमनीय'। इसी लड़कीको आगे चलकर जब भगवान्‌का प्रेम और उनकी कृपा प्राप्त हो गयी, तब लोग 'आण्डाल' कहने लगे थे।

रातमें भगवान्‌ने स्वप्नमें विष्णुचित्तजीको कन्याका सारा हाल बताया—'वाराहावतारमें मैंने पृथ्वीका उद्धार किया था, तब पृथ्वीने मुझसे पूछा कि आपको किस प्रकारकी पूजा परम प्रिय है? उस समय मैंने बतलाया था कि मुझे नामकीर्तन तथा पत्र-पुष्प-फल-तोयकी पूजा सर्वप्रिय है। मुझे प्राप्त करनेके लिये भक्त मेरे नामका कीर्तन करे और प्रेमभक्तिके साथ मेरी पूजा-अर्चा करे। मेरी उस बातको हृदयमें धारणकर पृथ्वी इस कन्याके रूपमें प्रकट हुई है और अब तुम्हारे घरमें बसना चाहती है। यदि तुम इस कन्याकी सेवा करते रहोगे तो अवश्य परमपदको प्राप्त होओगे।' ब्राह्मण-ब्राह्मणी इस कन्याको पाकर परम प्रसन्न हुए। यथासमय उन्होंने कन्याके जातकर्मादि संस्कार किये।

लड़की जब बोलने लगी तो उसके मुखसे 'विष्णु' के अतिरिक्त कोई दूसरा नाम ही नहीं निकलता था। जब वह

कुछ सयानी हुई तो भगवान्‌के गीत गाने लगी। पिताके मन्दिर चले जानेपर वह उनके पीछे उपवनकी रखवाली करती और भगवान्‌की पूजाके लिये फूलोंके हार गूँथती। कन्याकी बनायी मालाको लेकर विष्णुचित्त ब्राह्मण श्रीरंगनाथजीके मन्दिरमें जाते और माला भगवान्‌को चढ़ा आते। जब वह कुछ और बड़ी हुई तो भगवान् रंगनाथको अपने पतिके रूपमें भजने लगी। वह अपने प्रियतमके प्रेममें अपने-आपको इतना भूल जाती कि भगवान्‌के लिये गूँथे हुए हारको स्वयं पहनकर दर्पणके सम्मुख खड़ी हो जाती और अपने सौन्दर्यकी स्वयं प्रशंसा करती हुई कहती—'क्या मेरा सौन्दर्य मेरे प्रियतमको आकर्षित कर सकेगा?'

एक दिन मन्दिरके पुजारीने विष्णुचित्तकी माला यह कहकर लौटा दी कि उसमें किसी मनुष्यके सिरका बाल लगा हुआ है। ब्राह्मणको यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने ताजे पुष्प चुने, नवीन हार बनाया और भगवान्‌को अर्पण किया। दूसरे दिन भी पुजारीने कहा कि माला कुछ मुरझायी हुई है। विष्णुचित्तने अपने मनमें सोचा कि अवश्य ही इसमें कोई-न-कोई रहस्य होना चाहिये। वे जब इसका कारण घरपर ढूँढ़नेमें लगे, तब उनकी दृष्टि अकस्मात् अपनी लड़कीपर गयी। उन्होंने देखा कि वह परदेके पीछे नवीन पुष्पोंका हार पहने दर्पणके सम्मुख खड़ी है और मन-ही-मन अपने प्रियतम भगवान्‌से कुछ बातें कर रही है। वे दौड़कर लड़कीके पास गये और चिल्लाकर बोले—'बेटी! यह तूने क्या किया? तू पागल तो नहीं हो गयी जो भगवान्‌के लिये तैयार किये हारोंको स्वयं धारण करके जूठा कर रही है?' विष्णुचित्तने फिरसे दूसरे हार बनाये और प्रभुको चढ़ाया, लेकिन आण्डाल तो अपनेको

प्रभुके चरणोंमें समर्पित कर चुकी थी। समर्पण जब सम्पूर्ण होता है तो देवताको स्वीकार होता ही है। आवश्यकता इस बातकी है कि हृदयको प्रभुके चरणोंमें चढ़ाते समय वह सर्वथा शून्य, सर्वथा निरावरण रहे। आण्डालका मधुर और सम्पूर्ण समर्पण भला भगवान्‌को अंगीकार क्यों न हो। उसी दिन रातको विष्णुचित्तको भगवान्‌ने स्वप्नमें आदेश दिया 'मुझे आण्डालकी पहनी हुई माला धारण करनेमें विशेष सुख मिलता है, इसलिये वही हार मुझे चढ़ाया करो।' अब तो विष्णुचित्तको अपनी कन्याके महत्त्वका पूरा निश्चय हो गया। कुछ दिनों पीछे आण्डालकी धारण की हुई मालाओंको ही वे भगवान्‌को निवेदन करने लगे।

जब हृदय हरिके चरणोंमें चढ़ा दिया जाता है तो फिर संसारकी कोई भी चर्चा नहीं सुहाती। भगवान्‌ने उद्धवसे कहा है—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। १४)

जिसने अपने चित्तको मुझमें ही लगा दिया है, वह मुझको छोड़कर ब्रह्मपद, इन्द्रपद, चक्रवर्ती-राज्य, सारी पृथ्वी या पाताललोकका राज्य, योगकी सिद्धियाँ अथवा मोक्ष आदि किसीकी भी कामना नहीं करता।'

आण्डाल भी अहर्निश प्रभुके प्रेममें माती फिरती। एक दिन उसने अपने धर्मपितासे बड़े ही अनुनय-विनयके साथ दिव्य धामों तथा तीर्थस्थानोंके विषयमें पूछा। विष्णुचित्तका

चित्त प्रभुके चरणोंका अनुरागी था ही। वे बहुत प्रेम और श्रद्धाभरे शब्दोंमें अपनी बेटीसे कहने लगे—'भगवान् तो सर्वत्र ही समरूपसे विराजमान हैं, उनका कभी कहीं भी अभाव नहीं, परन्तु खास-खास स्थानोंमें खास रूपोंमें विराजते हैं, उन्हींमेंसे कुछ ये हैं। श्रीवैकुण्ठधाममें भगवान् वासुदेव निवास करते हैं। आमोदलोकमें संकर्षण या बलराम रहते हैं। प्रमोदलोकमें प्रद्युम्न और अनिरुद्धका निवास है। श्वेतद्वीपमें क्षीरशायी भगवान् विष्णु निवास करते हैं। बदरीवनमें नर-नारायण रहते हैं। नीमसारमें भगवान् हरिका स्थान है। मुक्तिनाथमें भगवान् शालग्राम तथा साकेत—अयोध्यापुरीमें अपने स्वरूपभूत भाइयोंके सहित मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी रहते हैं। मथुरामें भगवान् यदुनाथका निवास है और वे अपने प्रपन्न भक्तोंके भवबन्धनको छिन्न-भिन्न कर देते हैं। काशीपुरीमें स्वयं भगवान् विश्वनाथ विराजित हैं, जो 'राम-नाम' का तारक-मन्त्र देकर सभीको मोक्षका अधिकारी बना देते हैं। बरसाने—नन्दगाँवमें नन्दनन्दन बसते हैं और वे ही दयामय प्रभु वृन्दावनविहारी आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके नामसे वृन्दावनमें निवास करते हैं। कालीदहमें गोविन्दका निवास है और उन्हें ही गोवर्द्धनधारी गिरिधरलाल कहते हैं। हरिद्वारमें भगवान् यदुपति और प्रयागमें भगवान् वेणीमाधव हैं। गयामें गदाधर और गंगासागरमें कपिलमुनिका वास है। चित्रकूटमें जगज्जननी सीता और लक्ष्मणके साथ महाराज श्रीरामचन्द्रजी निवास करते हैं, पण्ढरपुरमें श्रीविट्ठलस्वामी हैं और दक्षिणमें कावेरीके तटपर भगवान् श्रीरंगनाथका वास है।

भगवान् श्रीरंगनाथका नाम सुनते ही आण्डालके रोमांच हो आया और उसकी आँखोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बरस पड़ी।

उसने विह्वल होकर अपने इष्टदेवके सम्बन्धमें अधिक जाननेकी इच्छा प्रकट की। तब विष्णुचित्त सुनाने लगे—'इक्ष्वाकुके यज्ञकी पूर्तिके लिये ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर भगवान् विष्णु वहाँ प्रकट हुए। भगवान्‌का साक्षात्कार हो जानेपर इक्ष्वाकु कृतार्थ हो गये और ब्रह्माकी आज्ञासे वे सरयूके तटपर अयोध्यामें तपस्या करने लगे। तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माने इक्ष्वाकुसे वर माँगनेके लिये कहा। इक्ष्वाकुने यही वर माँगा कि 'भगवान् विष्णुका यहीं अवधमें अवतार हो और वे श्रीरंगनाथजीके रूपमें उनके कुलदेव रहें।' ब्रह्माने उन्हें मुँहमाँगा वरदान दे दिया।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी जब लंकाको जीतकर अयोध्या आये तो उनके साथ विभीषण भी पधारे थे। वे जब लंका जाने लगे तो उन्होंने भगवान्‌से कहा कि आपका वियोग मेरे लिये सर्वथा असह्य है, अतएव मुझे ऐसी कोई वस्तु दीजिये, जिससे मेरे हृदयको धीरज हो। विभीषणके अटल प्रेमको देखकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें श्रीरंगनाथजीकी प्रतिमा दी। जब विभीषण कावेरीतटपर आये तो वे किसी दूसरे यज्ञ-अनुष्ठानमें संलग्न हो गये। फिर भगवान् श्रीरंगनाथजीने लंका जाना अस्वीकार कर दिया और विभीषणने वहीं भगवान्‌की मूर्ति स्थापित की। विभीषण भगवान्‌की पूजा-अर्चाके लिये नित्य लंकासे यहाँ आया करते थे।

भगवान् श्रीरंगनाथका वर्णन सुनकर आण्डालकी उत्कण्ठा और भी तीव्र हो गयी। उसने पितासे भगवान्‌की प्राप्तिका साधन पूछा। अब आण्डालके लिये एक क्षणका वियोग भी असह्य था—

गदगद बानी कंठमें, आँसू टपकै नैन।
वह तो बिरहिन स्यामकी, तलफति है दिन-रैन॥

वह बिरहिन बौरी भई, जानत ना कोइ भेद।
अगिन बरै, हियरा जरै, भये कलेजे छेद॥
जाप करै तो पीवका, ध्यान करै तो पीव।
जिव बिरहिनका पीव है, पिव बिरहिनका जीव॥

अब तो जिस प्रकार हरि मिलें, वही बात आण्डालको प्रिय थी। उसने मार्गशीर्षका व्रत किया। एक रातमें वह देखती है कि प्रभुजी स्वप्नमें उससे मिलने आये हैं। इस आनन्दका क्या कहना, वह उठी और भगवान्‌को अँकवारमें बाँधने चली ही थी कि वह छलिया खिसक गया····! 'उसे' तो तरसानेमें ही आनन्द आता है।

आण्डालकी विरहव्यथा बढ़ती ही गयी। उसके प्राण रात-दिन जीवनधनमें अटके रहते थे। वह उसीका नाम जपती, उसीका कीर्तन करती और उसीकी धुनमें डूबी रहती। उसकी आँखोंमें, हृदयमें, प्राणोंमें, रोम-रोममें श्रीरंगनाथजी ही छाये हुए थे। वह रोती और दहाड़ मारकर छाती पीटती—'प्रियतम! स्वप्नमें आकर तुमने मिलनेका जो उपक्रम किया है, उससे तो मेरे भीतरकी विरहाग्नि और धधक उठी है। यों तड़पानेमें तुम्हें कौन-सा रस मिलता है। हाय! एक क्षण भी तुम्हारे बिना रहा नहीं जाता। देव मेरे जीवनधन! यदि मेरे प्राणोंकी इस आकुल तड़पसे तुम्हारा कठोर हृदय तनिक भी पसीजे तो अभी आकर मुझे अपने चरणोंमें स्वीकार कर लो। प्रभो! ओ मेरे प्राणाधार! सीताकी सुधि लेनेके लिये तुमने समुद्रमें पुल बँधवाया और रावणको मारकर उसे अयोध्या लौटा लाये। शिशुपालका वध करके रुक्मिणीको अपनी शरणमें ले लिया। द्रौपदी, गज, गणिका और गोपियोंकी टेर सुन ली; परंतु मेरी ही बार इतना विलम्ब क्यों कर रहे हो! मैं जानती हूँ कि

मैं अपराधिनी हूँ; परंतु जैसी भी हूँ तुम्हारी हूँ—तुम्हीं मेरे प्राणवल्लभ, हृदयेश्वर, जीवनसर्वस्व और अवलम्ब हो। तुम्हें छोड़कर किसकी शरणमें जाऊँ? जिस प्रकार चकोर चन्द्रमाको और चातक घनश्यामको चाहता है, वैसे ही मेरा हृदय तुम्हें देखनेके लिये व्याकुल है—

देख्यो एक बार हूँ न नैन भरि तुम्हें, यातें
जौन-जौन लोक जैहैं तहीं पछितायँगी।
बिना प्रानधारे भये दरस तुम्हारे हाय
देख लीजौ आँखें ये खुली ही रह जायँगी॥

आण्डाल सदा अपने शरीरसे ऊपर उठी रहती थी, वह अपने बाहर-भीतर सर्वत्र अपने प्राणवल्लभ प्रभुके अतिरिक्त और किसी वस्तुको देखती ही न थी। वह शरीरसे विष्णुचित्तके बगीचेमें रहती थी, किंतु उसका मन नित्य वृन्दावनमें विचरता रहता था। वह गोपियोंके साथ खेलती और मिट्टीके घरोंदे बनाती। इतनेमें ही श्रीकृष्ण आकर उसके घरोंदोंको ढहा देते और हँसने लगते। कभी वह गोपियोंके साथ सरोवर-में स्नान करने लगती और प्रियतम श्रीकृष्ण आकर उन सबके वस्त्रोंको उठाकर ले जाते और कदम्बपर चढ़कर बैठ जाते। कभी-कभी वह मनसे ही वृन्दावनमें विचरती और रास्ता चलनेवालोंसे पूछती, 'क्या तुमने मेरे प्राणवल्लभको इधर कहीं देखा है? क्या किसीको मेरे कमलनयनका पता है?' और अपने-आप ही अपने प्रश्नोंका उत्तर भी देती—'अजी, देखा क्यों नहीं? वह तो वृन्दावनमें बाँसुरी बजाकर गोपियोंके साथ विहार कर रहा है।'

वसन्त-ऋतुमें वह कोयलको सम्बोधन करके बड़े करुण-स्वरमें कहती—'अरी कोयल! मेरा प्राणवल्लभ मेरे सामने क्यों

नहीं आता? वह मेरे हृदयमें प्रवेश कर मुझे अपने वियोगसे दु:खी कर रहा है। मैं तो उसके लिये इस प्रकार तड़फ रही हूँ और उसके लिये यह सब मानो निरा खिलवाड़ ही है।'

एक दिन जब वह अपने प्रियतम भगवान्‌के विरहमें अत्यन्त व्याकुल हो गयी, भगवान् रंगनाथने स्वप्नमें मन्दिरके अधिकारियोंको दर्शन देकर कहा—'मेरी प्रियतमा आण्डालको मेरे पास ले आओ।' इधर उन्होंने विष्णुचित्तको भी स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—'तुम आण्डालको लेकर शीघ्र मेरे पास चले आओ, मैं उसका पाणिग्रहण करूँगा।' यही नहीं, उन्होंने स्वप्नमें आण्डालको भी दर्शन दिये और उसने देखा कि मेरा विवाह बड़ी धूम-धामके साथ श्रीरंगनाथजीके साथ हो रहा है। उसका स्वप्न सच्चा हो गया। दूसरे ही दिन श्रीरंगनाथजीके मन्दिरमें आण्डाल और उसके धर्मपिता विष्णुचित्तको लेनेके लिये कई पालकियाँ और दूसरे प्रकारका लवाजमा भी आया। ढोल बजने लगे, शंखकी ध्वनि होने लगी, वेदपाठी ब्राह्मण वेद पढ़ने लगे और भक्तलोग आण्डाल और उसके स्वामी श्रीरंगनाथजीकी जय बोलने लगे। आण्डालने प्रेममें मतवाली होकर मन्दिरमें प्रवेश किया और तुरंत वह भगवान्‌की शेषशय्यापर चढ़ गयी। इतनेमें ही लोगोंने देखा कि सर्वत्र एक दिव्य प्रकाश छा गया और उस प्रकाशमें देवी आण्डाल सबके देखते-ही-देखते बिजली-सी चमककर विलीन हो गयी। प्रेमी और प्रेमास्पद एक हो गये। आण्डालके जीवनका कार्य आज पूरा हो गया। वह भगवान् नारायणमें जाकर मिल गयी।

दक्षिणके वैष्णव-मन्दिरोंमें आज भी आण्डालके विवाहका उत्सव प्रतिवर्ष सर्वत्र मनाया जाता है। विष्णुचित्तने भी अपना

शेष जीवन भगवान् श्रीरंगनाथ और उनकी प्रियतमा श्रीआण्डालदेवीकी उपासनामें व्यतीत कर भगवत्-धामको प्रयाण किया।

लोगोंको इस कथामें आश्चर्य या शंका करनेकी कोई गुंजाइश नहीं है। *'हौं भक्तनको भक्त हमारे'* प्रभुकी प्रतिज्ञा है। सर्वात्मसमर्पण और अखण्ड प्रेमसे सब कुछ साध्य है। हम संसारी जीवोंके लिये जो असम्भव प्रतीत होता है, वह भगवान् और उनके भक्तोंके लिये बहुत साधारण बात है; क्योंकि—

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः
स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं
भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम्॥

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्तिमती कुँअर-रानी

कुँअर-रानी सम्भ्रान्त राजपूत माता-पिताकी एकमात्र लड़ेती संतान थी। सम्पन्न घर था, माता-पिता बहुत ही साधु-स्वभावके तथा भगवद्भक्त थे। कुँअर-रानीके अतिरिक्त उनके कोई संतान नहीं थी, इसलिये माता-पिताके समस्त स्नेह-सौहार्दकी पूर्ण अधिकारिणी एकमात्र कुँअर-रानी ही थी। वह बहुत ही प्यार-दुलारसे पाली-पोसी गयी थी। उसने जैसे माता-पिताके स्नेहको प्राप्त किया, उसी प्रकार उनकी साधुता तथा भगवद्भक्तिका भी उसके जीवनपर काफी असर हुआ। वह लड़कपनसे ही भगवान्‌के दिव्य सौन्दर्य-माधुर्यमय स्वरूपका ध्यान किया करती और भगवान्‌का मधुर नामकीर्तन करते-करते प्रेमाश्रु बहाती हुई बेसुध हो जाती। माता-पिताने चौदह वर्षकी उम्रमें बड़े उमंग-उत्साहके साथ उसका विवाह कर दिया। कुँअर-रानी विदा होकर ससुराल गयी। विधाताका विधान बड़ा विचित्र होता है। उसी रात्रिको उसके माता-पिताने भगवान्‌के पवित्र नामका कीर्तन करते हुए विषूचिका रोगसे प्राण त्याग दिये। कुँअर-रानीको पाँचवें दिन एक कासीदने जाकर यह दुःखप्रद समाचार सुनाया। वह उसी दिन वापस लौटनेवाली थी और माता-पिताके भेजे हुए किसी आदमीकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसके बदले माता-पिताका मरण-संवाद लेकर कासीद आ गया। अकस्मात् माँ-बापके मरणका समाचार सुनकर कुँअर-रानी स्तब्ध रह गयी। उसको बड़ा ही दुःख हुआ; परंतु लड़कपनमें प्राप्त की हुई सत्-शिक्षाने उसे धैर्यका अवलम्बन प्राप्त करनेमें बड़ी सहायता की। उसने इस दुःखको भगवान्‌का मंगलविधान मानकर सहन कर लिया और पीहर जाकर माता-पिताके

श्राद्धादिको भलीभाँति सम्पन्न करवाया। माता-पिताके कल्याणार्थ अधिकांश सम्पत्ति सुयोग्य पात्रोंको दान कर दी तथा शेषकी सुव्यवस्था करके वह ससुराल लौट आयी। पति साँवतसिंह बहुत ही सुशील, धर्मपरायण तथा साधु-स्वभावके थे, इससे उसके मनमें संतोष था; परंतु विधाताका विधान कुछ दूसरा ही था। छः ही महीने बाद साँप काटनेसे उनकी भी मृत्यु हो गयी। घरमें रह गये बूढ़े सास-ससुर और विधवा कुँअर-रानी। अभी कुँअर-रानी केवल चौदह वर्षकी थी। इस भीषण वज्रपातने एक बार तो उसके हृदयको भयानकरूपसे दहला दिया; परंतु कुछ ही समय बाद भगवत्कृपासे उसके हृदयमें स्वतः ही ज्ञानका प्रकाश छा गया। उस प्रकाशकी प्रभामयी किरणोंने जगत्‌के यथार्थ रूप, जागतिक पदार्थों और प्राणियोंकी अनित्यता, क्षणभंगुरता तथा दुःखरूपता, मानव-जीवनके प्रधान उद्देश्य, मनुष्यके कर्तव्य, मनुष्यको प्राप्त होनेवाले समस्त सुख-दुःखोंमें मंगलमय भगवान्‌की मंगलमयी कृपा और भगवान्‌की शरणागति तथा भजनसे ही समस्त दुःखोंका नाश तथा नित्य परमानन्दस्वरूप भगवान्‌की प्राप्ति होती है—इन सारी चीजोंके प्रत्यक्ष दर्शन करा दिये। उसका दुःख जाता रहा। जीवनका लक्ष्य निश्चित हो गया और उसकी प्राप्तिके लिये उसे प्रकाशमय निश्चित पथकी भी प्राप्ति हो गयी।

कुँअर-रानीने इस बातको भलीभाँति समझ लिया कि मनुष्य-जीवनका परम और चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है। नारी हो या पुरुष, जीव मनुष्ययोनि प्राप्त करता है भगवान्‌को पानेके लिये ही; परंतु यहाँ विषयभोगोंके भ्रमसे भासनेवाले आपातरमणीय सुखोंमें इस लक्ष्यको भूलकर विषयसेवनमें फँस जाता है और फलतः कामनाकी परवशतासे मानवजीवनको पापोंके संग्रहमें

लगाकर अधोगतिमें चला जाता है। विषयसेवनसे आसक्ति और कामनादि दोष बढ़ते हैं और इसीलिये बुद्धिमान् विरागी पुरुष विषयोंका स्वेच्छापूर्वक त्याग करके संन्यास ग्रहण करते हैं। यद्यपि विवाह-विधान भी कामनाको संयमित करके भगवत्प्राप्तिके मार्गमें अग्रसर होनेके लिये ही है। उसका भी चरम उद्देश्य विषयोपभोगमें अनासक्त होकर भगवान्‌की ओर लगाना ही है। इसीलिये गृहस्थीको भगवान्‌का मन्दिर और पतिको भगवान् मानने तथा गृह-कार्यको भगवत्सेवाके भावसे करनेका विधान है। इतना होनेपर भी सधवा स्त्रियोंको विषयसेवनकी सुविधा होनेसे उनमें विषयासक्तिका बढ़ना सम्भव है। विधवाजीवन इस दृष्टिसे सर्वथा सुरक्षित है। यह एक प्रकारसे पवित्र साधुजीवन है, जिसमें भोगजीवनकी समाप्तिके साथ ही आत्यन्तिक सुख और परमानन्दस्वरूप भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाले आध्यात्मिक साधनोंका संयोग स्वतः ही प्राप्त हो जाता है। कामोपभोग तो नरकोंमें ले जानेवाला और दुःखोंकी प्राप्ति करानेवाला है। भोगोंसे आजतक किसीको भी परम शान्ति, शाश्वत सुख या भगवान्‌की प्राप्ति नहीं हुई।

यह सब सोचकर कुँअर-रानीने मन-ही-मन कहा—'मुझे यदि भोगजीवनमें ही रहना पड़ता तो पता नहीं आगे चलकर मेरी क्या दशा होती। बच्चे होते, उनमें मोह होता; मर जाते, दुःख होता; कामनाका विस्तार होता, चित्त मोह-जालमें फँस जाता और दिन-रात नाना प्रकारकी चिन्ता-ज्वालाओंसे जलना पड़ता। मनको प्रपंचके अतिरिक्त परमात्माका चिन्तन करनेका कभी शायद ही अवकाश मिलता। भगवान्‌की मुझपर बड़ी कृपा है, जो उन्होंने मुझको अनायास और बिना ही माँगे जीवनको सफल बनानेका सुअवसर दे दिया है। पशुकी भाँति

इन्द्रिय-भोगोंमें रची-पची रहनेकी इस पवित्र जीवनसे क्या तुलना है! भगवान्‌ने मुझ डूबती हुईको उबार लिया। धन्य है उनकी कृपाको।

'उसने सोचा, मनुष्य भ्रमसे ही ऐसा मान बैठता है कि भगवान्‌ने अमुक काम बहुत बुरा किया। वास्तवमें ऐसी बात नहीं है। मंगलमय भगवान् जो कुछ भी करते हैं, हमारे मंगलके लिये ही करते हैं। समस्त जीवोंपर उनकी मंगलमयी कृपा सदा बरसती रहती है। उनकी मंगलमयता और कृपालुतापर विश्वास न होनेके कारण ही मनुष्य दुःखी होता, अपने भाग्यको कोसता और भगवान्‌पर दोषारोपण करता है। फोड़ा होनेपर उसे चीर देना, विषम-ज्वर होनेपर चिरायते तथा नीमका कड़वा क्वाथ पिलाना और कपड़ा पुराना एवं गंदा हो जानेपर उसे उतारकर नया पहना देना जैसे परम हितके लिये होता है, वैसे ही हमारे अत्यन्त प्रिय सांसारिक सुखोंका छीना जाना, नाना प्रकारके दुःखोंका प्राप्त होना, शरीरसे वियोग कर देना भी मंगलमय भगवान्‌के विधानसे हमारे परम हितके लिये ही होता है। हम अपनी बेसमझीसे ही उसे भयानक दुःख मानकर रोते-कलपते हैं। इन सारे दृश्योंके रूपमें, इन सभी स्वाँगोंको धारण करके नित्य-नवसुन्दर, नित्य-नवमधुर हमारे परम प्रियतम भगवान् ही अपनी मंगलमयी लीला कर रहे हैं, इस बातको हम नहीं समझते। रोने-कराहनेकी भयानक लीलाके अंदर भी वे नित्य मधुर हँसी हँस रहे हैं, इसे हम नहीं देख पाते। इसीसे बाहरसे दीखनेवाले दृश्यों और स्वाँगोंकी भीषणताको देखकर काँप उठते हैं।

दुःखके रूपमें भगवान्‌का विधान ही तो आता है और वह विधान अपने विधाता भगवान्‌से अभिन्न है। सारांश कि

भगवान् ही दुःखके रूपमें प्रकट हैं और वे इस रूपमें प्रकट हुए हैं हमारे परम कल्याणके लिये ही।

'अहा! मुझपर भगवान्‌की कितनी अकारण करुणा है, जो उन्होंने मेरे सारे सांसारिक झंझटोंको, विषयोंमें फँसानेवाले सब साधनोंको हटाकर मुझको सहज ही अपनी ओर खींच लिया है। मुझे आज उनकी अहैतुकी कृपासे यह स्पष्ट दीखने लगा है कि समस्त सुखोंके भण्डार एकमात्र वे श्रीभगवान् ही हैं। विषयोंमें सुख देखना और विषयभोगोंसे सुखकी आशा रखना तो जीवका महामोह या भीषण भ्रम है, आज भगवान्‌ने कृपा करके मेरे इस महामोहको मार दिया और भीषण भ्रमको भंग कर दिया है। यह क्या मुझपर उनकी कम कृपा है! वे कृपासागर हैं, कृपा ही उनका स्वभाव है, वे नित्य कृपाका ही वितरण करते हैं। धन्य हैं। अब तो बस, मैं केवल उन्हींका चिन्तन करूँगी, उन्हींके नामको सदा रटूँगी। वृद्ध सास-ससुरके रूपमें भी उन्हींके दर्शन करूँगी, भगवान्‌का भजन ही तो मानव-जीवनका प्रधान धर्म है। जिसके जीवनमें भजन नहीं वह तो मनुष्य-नामधारी पशु या पिशाच है। मानवताका विकास—प्रकाश और प्रसार तो भजनसे होता है। दिन-रात प्रभुका मधुर स्मरण करना और दिन-रातकी प्रत्येक चेष्टाका प्रभुकी पूजा तथा प्रसन्नताके लिये ही किया जाना भजन है।' इस प्रकार विवेक, विचार और निश्चय करके परम भाग्यवती कुँअर-रानी भगवान्‌के नित्य भजनमें लग गयी।

जो स्त्रियाँ घर और घरके पदार्थोंमें आसक्त न होकर पतिके घरको भगवान्‌का मन्दिर, पतिको भगवान् तथा घरके कार्यको भगवान्‌की सेवा मानकर जीवन-निर्वाह करती हैं,

उनकी बात तो अलग है; पर जो केवल विषयसेवन तथा कामोपभोगके लिये ही पतिका सेवन करती है और कुत्ती, गदही या सूकरीकी भाँति शरीर-संयोगमें ही सुखका अनुभव करती है, वह तो वस्तुतः मन्दभागिनी ही है; क्योंकि वह दुर्लभ मानवजीवनको व्यर्थ खो ही नहीं रही है, साथ ले जानेके लिये पापकी भारी पोट भी बाँध रही है। भगवान् शंकरने कहा है—

उमा सुनहु ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥

जो भगवान्‌को छोड़कर विषयोंमें अनुराग करते हैं, वे ही वस्तुतः अभागे हैं। कुँअर-रानी इस अभागेपनसे सर्वथा छूट गयी है और माता-पिता तथा पतिसे रहित होकर भी वह परम सौभाग्यको प्राप्त हो गयी है; क्योंकि उसका चित्त क्षणभंगुर दुःखरूप विषयोंसे विरक्त होकर नित्य सत्य सनातन परमानन्दस्वरूप प्रभुके सदा सुखद अच्युत चरणारविन्दका चंचरीक बन गया। उसने जागतिक दृष्टिसे दीखनेवाले अति भयानक दुःखमें भी भगवान्‌को देखा, पहचाना और पकड़ लिया। भक्त तो कहता है—

देख दुःखका वेश धरे मैं
नहीं डरूँगा तुमसे नाथ!
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें मैं
पकड़ूँगा जोरोंके साथ॥

× × × ×

तुम्हरे बिना नहीं कुछ भी जब,
तब फिर मैं किसलिये डरूँ।
मृत्यु-साज सज यदि आओ तो
चरण पकड़ सानंद मरूँ॥

कुँअर-रानी वृद्ध सास-ससुरकी भगवद्भावसे सेवा करने लगी। छोटी उम्र होनेपर भी उसकी सच्ची भक्तिभावनाका प्रताप इतना बढ़ा कि आस-पासके लोग ही नहीं; गाँवभरके नर-नारी उसके परम पवित्र तथा परम तेजस्वी जीवनसे प्रभावित होकर भगवान्‌की ओर लग गये। वह उस गाँवके लोगोंके लिये मानो भवसागरसे तारनेवाली जहाज ही बन गयी।

उसकी जीवनचर्या बड़ी ही पवित्र और आदर्श थी। उसने नमक और मीठा खाना छोड़ दिया। वह सदा सादा भोजन करती। सादे सफेद कपड़े पहनती। सिरके केश मुड़वा दिये। आभूषणोंका त्याग करके तुलसीकी माला गलेमें पहन ली। मस्तकपर गोपीचन्दनका तिलक करती। रातको काठकी चौकीपर घासकी चटाई बिछाकर सोती। जाड़ेके दिनोंमें एक कम्बल बिछाती और एक ओढ़ती। रात्रिको केवल चार घंटे सोती। प्रातःकाल सूर्योदयसे बहुत पहले उठकर स्नानादिसे निवृत्त हो सास-ससुरकी सेवामें लगती। मुँहसे सदा भगवान्‌का नामोच्चारण होता रहता और मनमें सदा भगवान्‌की मधुर छविका दर्शन करती रहती। गीता, रामायण और भागवतका पाठ तथा मनन करती। दिनमें अधिकांश समय मौन रहती। नियत समयपर सास-ससुरको प्रतिदिन श्रीमद्भागवत, रामायण या गीता सुनाती तथा उनके अर्थको समझाती। उसके सत्संगमें गाँवके लोग भी आते, जो वहाँसे सुख-शान्ति प्रदान करनेवाले अत्यन्त पवित्र मधुर अमृतकणोंको लेकर लौटते। जैसा उसका उपदेश होता, वैसा ही उसका जीवन भी था। तपस्या, विनय, प्रेम, संतोष, भगवद्भक्ति, विरक्ति एवं दैवीसम्पत्ति आदि सब मानो उसमें मूर्तिमान् होकर रहते थे। उसे देखते ही देखनेवालेके मनमें पवित्र मातृभाव तथा भगवद्भाव उदय होता। वह अपने

घरका सारा काम अपने हाथों करती। घरमें कुआँ था। उससे स्वयं पानी भरती, स्वयं झाड़ू लगाती, बर्तन माँजती, कपड़े धोती, रसोई बनाती, भगवान्‌की सेवा करती और सास-ससुरकी सेवा करती। उसका जीवन सब प्रकारसे सात्त्विक और आदर्श था। इस प्रकार सास-ससुर जबतक जीवित रहे, तबतक वह पूर्ण संयमित जीवनसे घरमें रहकर उनकी सेवा करती रही और उनके मरनेपर सब कुछ दान करके श्रीवृन्दावनधाममें चली गयी एवं वहाँ एक परम विरक्त संन्यासिनीकी भाँति कठोर तपस्या तथा भजनमय जीवन बिताकर अन्तमें भगवान्‌को प्राप्त हो गयी।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्तदेवी फूलीबाई

मारवाड़ वीरताके लिये विश्व-विश्रुत है। यहाँकी वीर-प्रसू-भूमिमें अनेकों संत-महात्माओंने भी अपनी इहलोक-लीला की है, इसका अभी बहुत कम परिचय हो पाया है। यहाँके सिकता-समूहके नीचे भक्तिकी वेगवती सरिता उन्मादिनीकी तरह लहराकर लुप्तप्राय हो गयी है। यहाँके जिन भक्तोंका संसारको थोड़ा-सा परिचय मिला है, वे संख्यामें थोड़े होते हुए भी गुणगरिमामें महान् हैं। महाराजा मानसिंहके मनोहर भजन और मेवाड़की मन्दाकिनी महामनस्विनी मीराके प्रेममदसे परिपूर्ण पद आज भी घर-घरमें गूँज रहे हैं। भक्तदेवी फूलीबाईका चरित्र भी भक्तोंके इतिहासमें अपना गौरवपूर्ण विशिष्ट स्थान रखता है। फूलीबाईके चारुचरित्रका जितना अंश ज्ञात है, वही उसके चरित्रकी उच्चता, निर्भरता, निष्ठा और निश्चयका पूरा परिचय देनेके लिये पर्याप्त है।

जोधपुरके सुविख्यात नरेश महाराजा जसवन्तसिंहजीके शासनकालमें फूलीबाईकी साधना फूली-फली थी। महाराजा जसवन्तसिंह अपने समयके सबसे प्रतापी हिन्दू-नरेश थे। वे उच्चकोटिके साहित्य-मर्मज्ञ और तत्त्वज्ञानसम्पन्न व्यक्ति थे। 'अपरोक्षसिद्धान्त,' 'अनुभव-प्रकाश' तथा 'आनन्द-विलास' आदि आपकी प्रसिद्ध आध्यात्मिक कृतियाँ हैं। महाराजाका शासनकाल सं० १६९५ से १७३५ तक था। फूलीबाई भी इस बीचमें मौजूद थी। फूलीबाईकी जन्म-निधन-तिथि अज्ञात है। फूलीबाई मारवाड़के एक छोटे-से गाँवमें पैदा हुई थी। उसका लालन-पालन नानाके घर माँझवास नामक गाँवमें हुआ था। वह कृषक-बालिका थी। उसका बचपन खेतोंमें ही बीता।

एक दिन फूलीबाई 'माता' (खेतको ले जाया जानेवाला भोजन) लिये हुए खेतकी ओर जा रही थी। भगाँणा गाँवके सुप्रसिद्ध संतज्ञानीजी उधरसे आ रहे थे। ज्ञानीजीने कृषक-कन्याकी ओर ध्यानसे देखा और उसके हृदयमें सोती हुई आध्यात्मिक भावनाको परखा। उनकी आँखोंके सामने फूलीबाईका भावी भव्य रूप झूलने लगा। ज्ञानीजीने कहा, 'बाई! मैं भूखा हूँ। मुझे थोड़ा भोजन चाहिये।' फूलीबाई रुकी, उसने श्रद्धासे मस्तक झुकाया और बड़ी भक्तिके साथ भोजन सामने रख दिया। ज्ञानीजीने भोजन करते हुए फूलीके सिरपर हाथ फेरा और राम-नामके अमृत-रसका उपदेश दिया। फूलीबाईने कृतज्ञतासे अपना सिर झुका लिया। वह 'राम-नाम' गुरुमन्त्रको पाकर कृतकृत्य हो गयी। उसका हृदय जिसकी खोजमें बेचैन था, वह मानो आज वरदानरूपमें उसे मिल गया। फूलीबाईने तभीसे ज्ञानीजीको अपना आध्यात्मिक गुरु स्वीकार किया। उनके हाथों भगवद्-भजनकी रखी हुई चिनगारी फूलीकी सतत-साधना और अनन्य-भावनासे सुलग उठी, उसकी ज्वालामें कलुष-कल्मष जलकर छार हो गये। फूलीका जीवन कुन्दनकी तरह जगमगा उठा।

उसके बाद फूलीबाई अपना समय एकान्त-चिन्तन और भगवद्-भजनमें व्यतीत करने लगी। उसका हृदय सांसारिक सुखों और भोगोंसे भागने लगा। फूलीबाई विवाहके योग्य हो गयी, पर नानाको न उसमें बालसुलभ चपलता दिखायी दी और न किशोरावस्थाके सुख-स्वप्नोंकी मादकता। नानाने विवाह करनेका निश्चय किया। फूलीने इसमें किसी प्रकारकी भी अनुरक्ति नहीं दिखायी। चुपचाप सगाई कर दी गयी और एक दिन बारात भी गाँवकी सीमापर आ गयी। फूली यह सुनकर

भीत मृगीकी तरह चकित-विस्मित हो गयी, उसके हृदयमें विचारमन्थन चलने लगा। उसने मन-ही-मन कहा—

जानी आना गोरबे, फूली कियो बिचार।
सब संताँरो साहिबो, सो मेरो भरतार॥

फूलीके हृदयमें तरह-तरहके संकल्प-विकल्प उठने लगे। उसने सोचा—'मैं इस मुर्देसे क्या विवाह करूँ! यह तो आज है कल मर जायगा, फिर चिर-वैधव्य! जो समस्त संतोंका स्वामी है, वही मेरा भर्तार है। उस 'अमर-पुरुष' से विवाह क्यों न किया जाय।' अन्तमें फूलीने 'अमर-पुरुष' से विवाह करनेका निश्चय किया। नानाको उसने स्पष्ट कह दिया कि मैं विवाह नहीं करूँगी। नानाने समझाया-बुझाया, पर फूलीने एक न सुनी। फूलीको उसके पूर्व-संस्कारोंने बल-संबल दिया। फूलीने स्पष्ट कहा—

फूली कयो कुँवारी परणै मैं तो पार ब्रह्म पति शरणै।

—विवाह तो कुमारीका होता है मेरा पति तो परब्रह्म है; फिर मैं दूसरा विवाह कैसे करूँ?

इस तर्कके सामने नानाको झुकना पड़ा। उसने झुँझलाकर पूछा—'बता, तेरा पति कहाँ है?' फूलीने उत्तर दिया—

फूली को परमेसर ऐसो, बेद-पुराण न जाणै कैसो।
जनम-मरणमें नाहिन प्यारो, सो है फूलीको भरतारो॥

फूलीने हिमालय-सी दृढ़ता दिखायी। बारात लौट गयी। गाँव-गाँवमें यह चर्चा फैल गयी। फूली अपने घरका काम-काज करती और अपना समय 'संत-समागम' में बिताने लगी। यहाँ राज-महिषी मीराकी तरह ***'संतन ढिंग बैठे-बैठे'*** लोक-लाज खोनेकी न कोई विशेष आशंका थी और न भय-भीति। संतोंसे उसने बहुत कुछ पाया। दूर-दूरतक फूलीका नाम फैल

गया। वह अपने-आपमें डूब गयी, उसे जो कुछ आत्म-रस मिला, उसके द्वारा उसके अध्यात्मका द्वार खुल गया। दूर-दूरसे चलकर साधुओंके दल-के-दल फूलीबाईके दर्शनके लिये आते। वह सबका यथोचित स्वागत-सत्कार करती।

एक बार एक साधु-मण्डली फूलीबाईका दर्शन कर काबुलकी ओर जा निकली। महाराजा जसवन्तसिंह भी उस समय उधर ही ससैन्य विचर रहे थे। महाराजाका पता लगनेपर साधुओंने आपसमें काना-फूँसी करनी शुरू की। वे आपसमें कहने लगे—'महाराजासे बातें न करना। ये फूलीबाईके देशके हैं। निःसंदेह कोई बड़े तत्त्वज्ञानी होंगे।'

आप आप मत बोलियो, जसवँत बड़ो नरेस।
इण राजाको राज वाँ, जाँ फूलीको देस॥

महाराजाने साधुओंको सादर पास बुलाया। फूलीबाईकी अनन्य भक्ति-भावनाका परिचय पाकर महाराजा बड़े प्रसन्न हुए और दर्शनके लिये लालायित हो गये। मौका पाकर मारवाड़की ओर चल पड़े। जोधपुर न जाकर सीधे 'माँझवास' पहुँचे। गाँवके किनारे फौजने डेरा डाल दिया। महाराजा पैदल फूलीबाईसे मिलने चल पड़े। फूलीबाई उस समय गृहकार्यमें व्यस्त थी। वह गायोंके बाड़ेमें गोबर एकत्र कर रही थी और उससे थेपड़ी थाप (कंडे बना) रही थी। महाराजा वहाँ पहुँचे। महाराजाकी ओर उसने उड़ती नजरसे देखा और फिर अपने काममें ऐसे लग गयी, जैसे कुछ भी न हुआ हो। महाराजा पास जाकर खड़े हो गये। जमीन ऊँची-नीची, गोबरसे भरी हुई और गंदी—महाराजाने एक दृष्टि डाली। वे पूर्ववत् चित्र-से खड़े रहे। इतनेमें अचानक गोबरका एक छींटा महाराजाके सुन्दर रत्नोंसे

जगमग कौशेय वस्त्रोंपर आ लगा। वे सिकुड़े-सिमटे, झुँझलाये-से ताड़ित-से होकर विस्फारित आँखोंसे फूलीकी ओर घूरने लगे। महाराजाका हाथ कपड़ोंसे दागको छुड़ानेमें लग गया। ठीक अवसर पाकर फूलीने अपनी गर्दन ऊपर उठायी और कहा—

× × × ×

रजोगुण तो नहिं गयो, आयो करण समाज॥
ऊँचो पीछो कहा करैं, निहचल कर लै मन्न।
झुग्गो, सिरकी पागड़ी, माटी मिलसी तन्न॥
माटी सू ही ऊपज्यो, फिर माटी हुय जाय।
फूली कहै राजा सुणो, करल्यो भजन उपाय॥
स्वान-काग-जंबुक भखै, जल-बल होसी खेह।
ऐसी गंदी देह कूँ ऊँचो करियो केह॥

—'बस, इसी बल-बूतेपर मुझसे मिलने आये थे? अब भी तुममें राजकीय रजोगुणी संस्कार प्रबल हैं। यह नाशवान् शरीर—इसको क्या ऊँचा-नीचा कर रहे हो! अपने मनको वशमें करो। यह तुम्हारा चोगा, यह तुम्हारे मस्तकका मुकुट और यह तुम्हारा शरीर—ये सब एक दिन मिट्टीमें मिल जायँगे, फिर भी इनके प्रति इतना ममत्व! तुम मिट्टीसे बने हो, एक दिन मिट्टीमें ही मिल जाओगे। भजन करो—उबरनेका उपाय यही है। यह शरीर एक दिन जल-वलकर राख हो जायगा। कुत्ते, कौए और सियार इसको खा जायँगे। इतना गंदा शरीर—फिर भी इतनी सार-सँभाल!'

फूलीके व्यंग वचनोंने महाराजाके पुस्तकीय अध्यात्मज्ञानपर तीव्र कशाघात किया। अपनेको सँभालते हुए महाराजाने एक और परीक्षा ली। फूलीकी बातें अनसुनी करते हुए महाराजाने

भोलेपनके साथ पूछा—'फूली! तुम्हारा नाम फूली क्यों है?' भला यह भी कोई प्रश्न था! और इसका उत्तर भी क्या कुछ हो सकता है? पर फूलीने उत्तर दिया—'महाराज! जबतक साँस है, तबतक फूली तो क्या पता नहीं और कितने ही नाम होंगे। जिस दिन इस शरीरसे छुटकारा मिलेगा, उस दिन तो एक ही नाम होगा पूर्ण।'

महाराजा बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने फूलीबाईसे 'धर्म-बहिन' बननेके लिये कहा। पाँच मुहरें निकालकर देनेको आगे हाथ बढ़ाया। फूलीको जैसे मालूम हुआ—ये स्वर्णमुद्राएँ उसके वैराग्यका उपहास है और उसकी निर्लोभताको एक जबर्दस्त चुनौती है। फूलीने कहा—

'महाराज! यह सब कुछ नहीं होगा। हमारा सम्बन्ध तो केवल भक्तिका है। आप मेरे घर आये हैं, मेरा ही रूखा-सूखा आतिथ्य स्वीकार कीजिये। मैं दीन-हीन जाटनी आपका राजसी आतिथ्य करनेमें असमर्थ हूँ। फिर भी आपको मेरा प्रेम-परोसा भोजन स्वीकार करना होगा।'

दोय दोय डबरा राबड़ी, दोय दोय सोगर (बाजरेके रोट) राज।
रुच-रुच जीमो प्रीत सूँ, घर फूलीके आज॥

महाराजा फूलीके प्रेमभरे आतिथ्यको न टाल सके। महाराजा सोचते थे—यह दीन जाटनी हमारा आतिथ्य कैसे कर सकेगी। उस समय एक चमत्कार हुआ। फूलीने सारी सेनाको भोजन कराया। सेनामें जितने आदमी थे, उतनी ही फूली हो गयी। राजा जसवन्तसिंहजी चकित होकर इधर-उधर ताक रहे हैं। साधुकी लाज तो प्रभु ही रखते हैं।

जेता माणस तेती फूली, पातल-पातल, पुरसै थू ली।
राजा जसवँत इत उत झाँकै, या साधाँ पत साहब राखै॥

राजा जसवन्तसिंहजीका मुकुट-मण्डित मस्तक उस जाटनीके चरणोंमें झुक गया। महाराजाने हाथ जोड़कर प्रार्थना की, 'बाई! आजसे तुम मेरी 'धर्म-बहिन' हो! मेरे साथ चलकर राजमहलोंको पवित्र करो तथा रानियोंका अपने अमृतभरे उपदेशोंसे उद्धार करो।'

महाराजा जसवन्तसिंह जोधपुर पहुँचे। फूलीबाईके आनेका संवाद राजमहलोंमें फैल गया। महल सजाये गये। रानियाँ वस्त्राभूषणोंसे सज-धजकर स्वागतके लिये तैयार थीं। इतनेमें साधारण गँवारू वेशमें एक 'स्त्री' सीढ़ियोंसे होती महलोंमें घुसती दिखायी दी। रानियाँ चकित रह गयीं, वे सोचने लगीं, क्या इसीके स्वागत-सत्कारका इतना समारोह। उनका सिर चकराने लगा। एक गँवार जाटनी, ऊँचा-ऊँचा घुटनोंतक घाघरा, बाल जटाओंकी तरह उलझकर इधर-उधर बिखरे हुए—जिनमें न कंघी न तेल। फूलीबाईने निडर-निःसंकोच वानरीकी तरह उछलकर रानियोंके बीच बैठ गयी। फूलीने पहले-पहल यह राजकीय सज-धज देखी थी, पर वह चकित नहीं हुई। फूलीकी आँखोंने इस वैभवके पीछे छिपे हुए नाशके कंकालको देखा, इसलिये वह इस चमक-दमकसे अभिभूत नहीं हुई। रानियाँ उसको आँख फाड़कर देखने लगीं।

फूलीने समझाना शुरू किया—

टगमग टगमग थे काँई जोवो।
जनम अमोलक थे क्यूँ खोवो॥
गहणो गाँठो तनकी सोभा, काया काँचो भाँडो।
फूली कहै थे राम भजो नित, और उपाधी छाँडो॥
राम भजो हे राणियाँ कह्यो हमारा मान।
भजन बिना भवमें सभी, सूकर स्वान समान॥

चेतन भाँडो फूटसी, कहा कीजै सिणगार।
इण त्रिषणा रे कारणै, फेरा फेरौ अपार॥
क्या इंदर क्या राजवी, क्या सूकर क्या स्वान।
फूली तीन्यूँ लोकमें, कामी एक समान॥
राम सबद साचो सदा, और सबद सब कूड़।
फूली कहै इण सबद बिन पड़सी सिरपर धूड़॥
सागर ऊपर सिला सिला तिराणी।
फूलीका पति सुणज्यो राणी॥

'आपलोग टुकुर-टुकुर क्या देख रही हैं? अमूल्य मानव-जन्म आप क्यों खो रही हैं? गहने-कपड़े तनकी शोभा हैं, शरीर कच्चे भाँड़के समान हैं। फूली कहती है—आप नित्य रामको भजिये और सारी उपाधि छोड़ दीजिये। हे रानियो! मेरी बात मानकर आप रामको भजिये। भजनके बिना इस संसारमें सभी सूअर-कुत्तेके समान हैं। यह शरीरका भाँड़ तो फूटेगा, इसका क्या श्रृंगार करना है। इस तृष्णाके कारण ही अगणित चक्कर काटने पड़ते हैं। इन्द्र हो, राजा हो, शूकर हो या कुत्ता हो, तीनों लोकमें कामी सब एक-से ही हैं। एक 'राम' शब्द ही सदा सच्चा है और सब शब्द झूठे हैं। फूली कहती है कि इस 'राम' शब्दके बिना सिरमें धूल पड़ेगी। फूलीका स्वामी तो ऐसा है—'रानी! सुनो, जिसने सागरपार सिला तरायी थी।'

पर फूलीके इन अनुभवभरे उपदेशोंको सौन्दर्य-सुरा और विलास-वारुणीके अथाह सागरमें डूबी हुई वे रानियाँ न समझ सकीं। फूली निराश हो गयी, उसे अपना श्रम बिना बीज ही खेतमें हल चलानेके समान निष्फल मालूम हुआ।

राम न बोलै राणियाँ, फूली कियो विचार।
उलट चलौ घर आपणे, लखै न सारासार॥

जब रानियोंने 'राम' नाम नहीं उच्चारण किया, तब फूलीबाई खिन्न होकर घर जानेको प्रस्तुत हो गयी। महाराजा जसवन्तसिंहजीको मालूम हुआ तो वे दौड़े आये। फूलीबाईसे स्नेहभरे अनुरोधके साथ रुकनेको कहा। महाराजा 'सांख्य' दर्शनके पारदर्शी विद्वान् थे, पर अनुभव-ज्ञानके सामने उसका मूल्य दो कौड़ी भी नहीं। कबीरने इसी अनुभवपर तो शब्दके पण्डितोंको ललकारा था। फूलीबाई ठहर गयी। उपर्युक्त पात्रको पाकर उसका हृदय फूल उठा। फूलीबाईने कुछ दिन रहकर ज्ञानोपदेश दिया। फूलीके उपदेशोंका सार गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें शास्त्र-वेद-विलोडनसे नवनीतके समान निकलनेवाले 'राम-नाम' के रूपमें ही था।

राम बिना किण कामरो, सांख्य योग अभ्यास।
फूली परमानंद बिन, कुण पूरैलो आस॥

फूलीको सिद्धिमें न विश्वास था और न वह उसकी महत्ता ही मानती थी—

कोइ कंचन कर देत है, धरती अम्बर दोय।
फूली तो मानै नहीं, राम नाम बिन कोय॥

जप-तपको फूलीबाईने राम-भजन बिना व्यर्थ ही बताया है।

बिन बीज हल फेरियाँ फल नहिं पावै कोय।

राम-नामके बिना तीर्थ-भ्रमण भी किसी कामका नहीं—

भ्रमको भूल्यो तीरथ जावै भटका खाय उलट घर आवै।
भ्रमको भूल्यो सेव करावै, अन्तकाल पत्थर हो ज्यावै॥

अन्तमें फूलीबाईने राजासे सौ बातोंकी एक बात यह कही—

सौ बाताँकी एक ही, सुण ले राजा बीर।
सुरत तारमें पोयलै, राम-नामका हीर॥

फूलीके अनुभवभरे उपदेशोंसे राजाने ज्ञानका प्रकाश पाया। उनके ग्रन्थ-ज्ञानका दम्भ दूर हो गया!

सचमुच, धन्य है उस देशको, जहाँ फूलीने अपनी भक्ति-साधना की। ऐसे ही संत-महात्माओंके पावन-चरित युग-युगतक अमर रहकर ज्ञानका प्रकाश फैलाते रहते हैं।

अन्तमें हम भी 'फूलीबाई' के चारु-चरित्रको पद्यबद्ध कर गानेवाले संत कृष्णदासके शब्दोंमें कहेंगे—

धन धन फूली देस घर, धन वह शहर मुकाम।
जसवँतको संसय मिट्यो, निरभै पायो राम॥

॥ श्रीहरिः ॥

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)-के अनमोल प्रकाशन

कोड	पुस्तक
820	भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार)
050	पदरत्नाकर
049	श्रीराधा-माधव-चिन्तन
058	अमृत-कण
332	ईश्वरकी सत्ता और महत्ता
333	सुख-शान्तिका मार्ग
343	मधुर
056	मानव-जीवनका लक्ष्य
331	सुखी बननेके उपाय
334	व्यवहार और परमार्थ
514	दुःखमें भगवत्कृपा
386	सत्संग-सुधा
342	संतवाणी—ढाई हजार अनमोल बोल
347	तुलसीदल
339	सत्संगके बिखरे मोती
349	भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति
350	साधकोंका सहारा
351	भगवच्चर्चा
352	पूर्ण समर्पण
353	लोक-परलोक-सुधार
354	आनन्दका स्वरूप
355	महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
356	शान्ति कैसे मिले?
357	दुःख क्यों होते हैं ?
348	नैवेद्य
337	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श
336	नारीशिक्षा
340	श्रीरामचिन्तन
338	श्रीभगवन्नाम-चिन्तन
345	भवरोगकी रामबाण दवा
346	सुखी बनो
341	प्रेमदर्शन
358	कल्याण-कुंज
359	भगवान्‌की पूजाके पुष्प
360	भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं
361	मानव-कल्याणके साधन
362	दिव्य सुखकी सरिता
363	सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ
364	परमार्थकी मन्दाकिनी
366	मानव-धर्म
526	महाभाव-कल्लोलिनी
367	दैनिक कल्याण-सूत्र
369	गोपीप्रेम

कोड पुस्तक	कोड पुस्तक
368 प्रार्थना—प्रार्थना-पीयूष	381 दीन-दुःखियोंके प्रति कर्तव्य
370 श्रीभगवन्नाम	379 गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य
373 कल्याणकारी आचरण	382 सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन
374 साधन-पथ—सचित्र	344 उपनिषदोंके चौदह रत्न
375 वर्तमान शिक्षा	371 राधा-माधव-रससुधा-(षोडशगीत) सटीक
376 स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी	384 विवाहमें दहेज—
377 मनको वश करनेके कुछ उपाय	809 दिव्य संदेश..........
378 आनन्दकी लहरें	
380 ब्रह्मचर्य	

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित कुछ साधन-भजनकी पुस्तकें

052 स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद	1214 मानस-स्तुति-संग्रह
819 श्रीविष्णुसहस्रनाम—शांकरभाष्य	1344 सचित्र-आरती-संग्रह
207 रामस्तवराज—(सटीक)	1591 आरती-संग्रह—मोटा टाइप
211 आदित्यहृदयस्तोत्रम्	208 सीतारामभजन
224 श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र	221 हरेरामभजन—दो माला (गुटका)
231 रामरक्षास्तोत्रम्	225 गजेन्द्रमोक्ष
1594 सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह	1505 भीष्मस्तवराज
715 महामन्त्रराजस्तोत्रम्	699 गंगालहरी
054 भजन-संग्रह	1094 हनुमानचालीसा—भावार्थसहित
140 श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली	228 शिवचालीसा
142 चेतावनी-पद-संग्रह	232 श्रीरामगीता
144 भजनामृत—६७ भजनोंका संग्रह	851 दुर्गाचालीसा
1355 सचित्र-स्तुति-संग्रह	236 साधकदैनन्दिनी